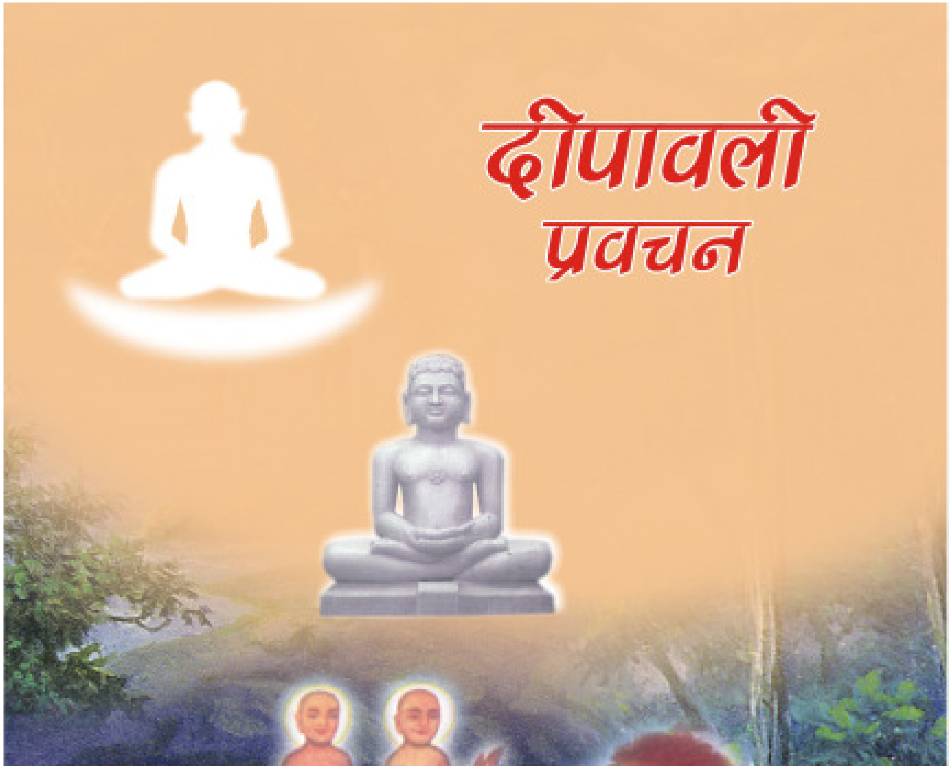
दीपावली
प्रवचन

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

दीपावली प्रवचन

भगवान श्री महावीरस्वामी निर्वाणोत्सव पर्व के पावन अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रासङ्गिक प्रवचन

हिन्दी अनुवाद / सम्पादन

देवेन्द्रकुमार जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़

प्रकाशन सहयोग

श्रीमती धनश्रीबाई कपूरचन्द जैन (डैडी)

हस्ते **श्रीमती कल्पना अनिलकुमार जैन**

अरिहन्त कोल सेल्स (ई) प्रा० लि० भोपाल

ई-4-108, धनश्री विला, अरेरा कालोनी, भोपाल

प्रकाशक :

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी-204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
21 अक्टूबर 2011, तीर्थधाम मङ्गलायतन में आयोजित भगवान श्री महावीरस्वामी निर्वाणोत्सव एवं पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालचन्द्रजी सोगानी के जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर

ISBN NO. :

न्यौछावर राशि : 10.00 रुपये मात्र

AVAILABLE AT -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN**
Sasni - 204216, Hathras (U.P.) India
e-mail : info@mangalayatan.com

— **PANDIT TODARMAL SMARAK BHAWAN**
A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015 (Raj.)

— **SHRI HITEN A. SHETH,**
SHREE KUNDKUND-KAHAN PARMARTHIK TRUST,
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30, Navyug CHS Ltd.,
V.L. Mehta Marg, Vile Parle (W),
Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **SHRI KUNDKUND KAHAN JAIN SAHITYA KENDRA**
Songarh (Guj.)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर

प्रकाशकीय

परमोपकारी चरम तीर्थङ्कर शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाणकल्याणक महोत्सव का कार्यक्रम, तीर्थधाम मङ्गलायतन में अत्यन्त भव्यता के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन एवं श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर ने सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में अपना अमिट प्रभाव स्थापित किया है। इस वर्ष 21 से 27 अक्टूबर 2011 तक आयोजित इस शिक्षण-शिविर में, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्यभक्त एवं गुरुदेशना को सफल करके, गुरु साधनाभूमि तीर्थधाम सुवर्णपुरी के इतिहास में स्वर्णिम अध्याय जोड़नेवाले, पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालचन्द्रजी सोगानी का जन्म शताब्दी वर्ष मनाया जाना भी एक ऐतिहासिक उपलब्धि है।

इसी प्रसङ्ग को लक्ष्यगत करते हुए, दीपावली पर्व पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रासङ्गिक प्रवचनों का सङ्कलन '**दीपावली प्रवचन**' प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है।

विशेष उल्लेखनीय है कि इस प्रवचन ग्रन्थ में दिनाङ्क 4-11-1945 को पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रदत्त प्रवचन प्रथम बार हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रवचन के सन्दर्भ में स्वयं गुरुदेवश्री के ये उद्‌गार विशेष अनुप्रेक्षणीय है।

ध्यान रखना! आज का घोलन अलग ही प्रकार का आता है।

इन भावों का विचार कर, इनका खूब घोलन करने जैसा है। आज विषय अच्छा आ गया है। अन्दर का घोलन बाहर आता है। ये दीपावली के माङ्गलिक गाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बहिनश्री के वचनामृत 432 में समागत निर्वाणोत्सव के बोल पर हुए प्रवचन तथा आत्मधर्म में विविध अङ्कों में उपलब्ध प्रवचनों का सङ्कलन हिन्दी में अनुवाद कर प्रकाशित किया जा रहा है।

गुरुदेवश्री के प्रासङ्गिक प्रवचनों के प्रकाशन का यह प्रयास यदि आपको कुछ भी लाभ दे सका तो हमारा श्रम सार्थक होगा।

हमारी भावना है कि पूज्य गुरुदेवश्री के विविध पर्वों — वीर शासन जयन्ती, श्रुत पञ्चमी, रक्षाबन्धन, महावीर जयन्ती इत्यादि पर हुए प्रवचन भी यथाशीघ्र प्रकाशित किये जाएँ — तदर्थ कार्यवाही शुरु की जा चुकी है।

इस प्रवचन ग्रन्थ का सङ्कलन, हिन्दी अनुवाद एवं प्रस्तुतिकरण श्री देवेन्द्रकुमार जैन (बिजौलियां), तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हमें प्रकाशनकर्ता के रूप में **श्रीमती धनश्रीबाई धर्मपत्नी श्री कपूरचन्द जैन (डैडी)** हस्ते **श्रीमती कल्पना धर्मपत्नी अनिलकुमार जैन,** अरिहन्त कोल सेल्स (ई) प्रा० लि० भोपाल का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

सभी जीव इस प्रवचन ग्रन्थ का अनुशीलन कर अपने जीवन में सच्ची दीपावली मनायें — यही भावना है।

पवन जैन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान
दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

ॐ

श्री महावीराय नमः

दीपावली प्रवचन

आत्मा में परिणमित करनेयोग्य भाव

श्री महावीरस्वामी आज निर्वाण पधारे; अर्थात्, सिद्ध हुए और श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्रगट हुआ; इस प्रकार ज्ञान में लेकर जीव, निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाते हैं।

श्री महावीरप्रभुजी तो 2526 वर्ष पहले ही निर्वाणदशा को प्राप्त हो गये थे, फिर 'आज ही प्रभुजी ने निर्वाण प्राप्त किया' — ऐसा किसलिए कहते हैं ?

वास्तव में कोई जीव, केवलज्ञानी और सिद्धभगवान को नहीं जानता, परन्तु अपनी ही पूर्णता को जानता है। अपनी पर्याय की सामर्थ्य भी ऐसी ही है, उसे वर्तमान करके जानता है। केवलज्ञान और सिद्धदशा की सामर्थ्य को निश्चित करनेवाला ज्ञान, स्वयं वर्तमानरूप है, और वह वर्तमान से ही जानता है, इससे सामनेवाले ज्ञेय को भी वर्तमानरूप करके ही जानता है। 'सिद्धभगवान, भूतकाल में हो गये' – ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमान ही जानता है' — ऐसे बीच के काल को निकाल कर, ज्ञेयरूप सिद्धभगवान को भी वर्तमान ही किया।

द्रव्य और गुण तो प्रत्येक पर्याय के साथ ही वर्तमान अखण्ड है। मेरा द्रव्य-गुण और उसकी जाननेरूप पर्याय, ये तीनों वर्तमान में ही रहे, और सामने ज्ञेय में द्रव्य-गुण-पर्याय के खण्ड हो जाये — ऐसा होता ही नहीं, परन्तु जैसे यहाँ ज्ञान वर्तमानरूप ही है, वैसे ही सामने ज्ञेय भी वर्तमानरूप ही है। ज्ञान, पूर्ण ज्ञेयद्रव्य को वर्तमान करके जानता है; अर्थात्, पर्याय के भूत-भविष्य — ऐसे भेद को छोड़कर, सभी पर्यायों से अभेदरूप पूरा ही द्रव्य, वर्तमान है — ऐसा ज्ञान जानता है।

'भूतकाल में महावीरस्वामी सिद्ध हुए' — ऐसा ज्ञान जानता नहीं है परन्तु 'वर्तमान में ही सिद्ध हुए' — ऐसा जानता है, उसमें ज्ञान और ज्ञेय दोनों द्रव्य की अखण्डता को लक्ष्य में लिया है। भूत या भविष्य की अवस्था से ज्ञान जानता नहीं, परन्तु वर्तमान अवस्था से ही जानने का कार्य करता है और द्रव्य-गुण तो वर्तमानरूप ही हैं; इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय से अखण्ड वस्तु वर्तमानरूप ही है और यदि सामने ज्ञेय वस्तु पूरी वर्तमान न हो तो उपादान-निमित्त का (ज्ञान-ज्ञेय का) मेल ही होता नहीं है।

भूत-भविष्य काल की पर्यायें हैं तो सही; उसकी ना नहीं है परन्तु यहाँ तो दूसरा न्याय कहना है। आज किस शैली से आता है, वह ध्यान रखना। ख्याल करनेवाला वर्तमान से ही ख्याल करता है या भूत-भविष्य की पर्याय से ख्याल करता है? सामने के ज्ञेय का ख्याल तो वर्तमान में ही करता है न! जैसे यहाँ ज्ञान वर्तमान ही है; वैसे सामने के ज्ञेय में भी भूत-भविष्य को भूल जा। (भूत-भविष्य की पर्याय के भेद को छोड़कर, सभी पर्यायों से अखण्डरूप वस्तु को, वर्तमान ज्ञेयरूप करके जान!) यहाँ उपादान

में एक समय में अखण्ड ज्ञानसामर्थ्य है और सामने निमित्तरूप लोकालोक भी एक समय में पूरा है। यहाँ ज्ञान, वर्तमानरूप पूरा हो और सामने ज्ञेय, वर्तमानरूप पूरा न हो — ऐसा हो ही नहीं सकता।

'एक समय, वह सर्व समय' (श्रीमद्‌जी) अर्थात्, क्या? **कि एक समय में ही वस्तु पूरी है, दूसरे समय की पूर्णता दूसरे समय है और तीसरे समय की तीसरे समय है। ऐसे प्रति समय वस्तु पूर्ण है** परन्तु बहुत समय इकट्ठा होने के बाद वस्तु की पूर्णता होती है — ऐसा नहीं है।

वर्तमान ज्ञान, वर्तमान ज्ञेय को अखण्ड करके जानता है; इसलिए वास्तव में तो स्वयं एक समय में पूरा वर्तमान है, इसका स्वीकार है। क्या ज्ञेय वस्तु का कोई भाग भूत-भविष्य में वर्तता है या वर्तमान ही पूरा है? वर्तमान ही पूरा है। इसलिए ज्ञान में पूरा ज्ञेय आ जाता है। काल को लम्बा करके भूत-भविष्यपर्याय के भेद को लक्ष्य में लेना, वह व्यवहार है। **परमार्थ से गुण-पर्यायों सहित एक ही समय में पूरा द्रव्य वर्तमान है।** समय-समय होनेवाली पर्याय, वह अखण्ड गुण-द्रव्य को एक-एक समय में वर्तमानरूप टिकाकर रखती है। जैसे कोई, वस्तु की पर्याय को देखते ही, ज्ञान में अखण्ड को प्रतीत में लेकर कहता है कि पूरी वस्तु दिखती है — ऐसे जिस-जिस का ज्ञान करता है, उसको वर्तमान पूरा बनाता है; भूत-भविष्य बाकी नहीं रह जाता — ऐसा ज्ञानस्वभाव है; इससे 'श्री महावीरप्रभुजी ने पूर्व में सिद्धदशा पायी' — ऐसा भूत से ख्याल करता नहीं; 'प्रभुजी ने आज ही सिद्धदशा पायी' — ऐसा वर्तमान ख्याल करता है।

अहो! सिद्धदशा में आत्मा परिपूर्ण ज्ञान-आनन्ददशारूप

परिणमित हो गया। सिद्धदशा में भी आत्मा का उत्पाद-व्यय -ध्रौव्यपना होता है। वहाँ परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि अवस्थारूप प्रत्येक समय उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्था का व्यय होता है और सादि-अनन्त सिद्धदशा में आत्मा, ध्रुवपने कायम रहता है। सिद्धभगवान, रागादि विकाररहित और शरीर आदि संयोगरहित, पूर्ण ज्ञान-सुख इत्यादि स्वभावरूप परिणमते हैं — ऐसा जिस जीव ने अपने ज्ञान में जाना, उस ज्ञान में अनन्त सामर्थ्य है। **'एक समय में सिद्धभगवान हैं' — ऐसा जो ज्ञान निश्चित करता है, वह ज्ञान ऐसी प्रतीति करता है कि मैं भी एक समय में सिद्धसमान पूर्णस्वरूपी हूँ।**

पुण्य-पाप से रहित और ज्ञानादि-अनन्त गुणों के पिण्डरूप अकेला आत्मस्वभाव, उसकी एक शुद्धपर्याय के परिपूर्ण सामर्थ्य को जिसने प्रतीति में लिया, उसे वर्तमान पर्याय में भगवान की ओर के विकल्प का राग होने पर भी, अपने ज्ञान को उससे अधिक रखकर (ज्ञान को राग से अलग करके), अपनी पर्याय की अनन्त सामर्थ्य का ज्ञान किया।

'आज प्रभात में प्रभुश्री के आत्मा ने परम पवित्र मुक्तदशा पायी' — ऐसा भगवान की तरफ के लक्ष्य का जो विकल्प है, वह तो राग है, **परन्तु सिद्धस्वभाव की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य, अपने असंख्य समय के उपयोगवाली पर्याय में स्वीकार करनेवाले जीव का ज्ञान और उस ज्ञान के सामर्थ्य की एक समय में प्रतीति, उस विकल्प से अधिक (भिन्न) हुए है। ज्ञान और प्रतीतिरूप उस पर्याय ने स्वभाव की ओर एकता की है और विभाव से अधिकता (भिन्नता) की है।**

उस अधिक (भिन्न) हुए ज्ञान ने शरीरादि सर्व परद्रव्यों का अपने में अभाव ही बनाया है; अर्थात्, वह किसी परवस्तु को तो अपना स्वरूप मानता ही नहीं, और स्वभाव के बल से विकार को तुच्छ बनाया है; अर्थात्, अस्थिरता में विकल्प होने पर भी 'यह मुझे लाभदायक है ही नहीं' — ऐसी प्रतीति से उस ओर का बल तोड़ दिया है। इस प्रकार पर से भिन्न और विकार से अधिक (भिन्न) हुआ जिसका ज्ञान है — ऐसा जीव, अल्प काल में विकार का सम्बन्ध सर्वथा तोड़कर सिद्ध होता है; इसमें अन्तर पड़ता ही नहीं। स्वयं के ज्ञान सामर्थ्य के बल से विकल्प से अधिक (भिन्न) होकर जो ज्ञान आगे बढ़ा, वह विकल्प को तोड़कर सिद्ध हो ही जाता है।

विकल्प और राग का, दृष्टि में तो पहले से अभाव है ही परन्तु अस्थिरता में भी विकार को तुच्छ किया। विकार का वस्तु में अभाव और अवस्था में तुच्छता जिसे पहले से है, वही जीव, स्थिरता द्वारा अवस्था में भी विकार का अभाव करके सिद्ध हो जाता है। जिसके ज्ञान में सिद्धभगवान के अनन्त ज्ञानसामर्थ्य की स्वीकृति आयी, उसे आत्मस्वभाव की स्वीकृति आयी है और जिसे आत्मस्वभाव की स्वीकृति आयी है, उसे अपनी सिद्धदशा की भी स्वीकृति आयी है। कहा है कि 'जीव, वह जिनवर और जिनवर, वह जीव'।

आत्मा का स्वभाव जाननेरूप है। जैसा है, वैसा आत्मा जाने। जाननहार है, वह सबको जानता है। चैतन्यकिताब में 'नहीं जानना' — ऐसा चिह्न ही नहीं। 'मात्र जानना' — उसमें विकल्प कहाँ रहा ? जानने में, विकल्प करके अटकने

का, चैतन्य का स्वरूप नहीं है। इस प्रकार विकल्प को तुच्छ करके, अपने ज्ञानसामर्थ्य को जिसने अधिक (भिन्न) किया, उसने सिद्धदशा की पूर्ण सामर्थ्य का ख्याल किया।

सिद्धभगवान वास्तव में पर को जानते नहीं, परन्तु अपने ज्ञान की अवस्था में, जानने की पूर्ण शक्ति प्रगट हो गयी, उस अपनी ज्ञानसामर्थ्य को ही जानते हैं; उसी प्रकार सिद्धभगवान की पवित्रता की सामर्थ्य का जिसने ख्याल किया, वह जीव भी वास्तव में तो सिद्धभगवान की अनन्त सामर्थ्य को निश्चित करनेवाली अपनी निर्मलपर्याय की सामर्थ्य को ही जानता है। अपनी निर्मलदशा को वर्तमानरूप करके जानने पर, सामने निमित्तरूप ज्ञेयरूप से अनन्त सिद्ध भगवन्तों और तीर्थङ्कर भगवन्तों को तथा सन्तों-मुनियों को वर्तमानरूप प्रगट करके जानता है। सामने ज्ञेय वर्तमान हुए बिना, वर्तमान ज्ञानपर्याय उसे जाने किस तरह ?

देखो तो सही! यह निर्वाणकल्याणक की महिमा! 'भगवान महावीर आदि भूतकाल में सिद्ध हुए' — ऐसा मैं नहीं जानता, परन्तु 'वर्तमान ही हुए' — ऐसा जानता हूँ; अर्थात्, मानो अभी ही साक्षात् अपने सन्मुख ही वे सिद्ध होते हो — ऐसी शैली से कथन किया है। 'प्रभुश्री आज मोक्ष पधारे' — ऐसे विकल्प में यद्यपि पर-सन्मुख झुकाव है परन्तु यदि उस झुकाव को तोड़कर, ज्ञान -सामर्थ्य आगे बढ़ती जाये तो ही, उस ज्ञान ने सिद्धपर्याय को देखा है, प्रतीति में लिया है।

सिद्धदशा का निर्णय करनेवाला जीव, वास्तव में अपनी पर्याय की सामर्थ्य को ही देखता है। 'सिद्ध का आत्मा

परिपूर्ण शुद्ध शक्तिपने उत्पाद और व्यय से नित्य टिका हुआ है' — इसका निर्णय करनेवाला कौन है ? यदि सूक्ष्मता से देखे तो, जिसने सिद्ध का निर्णय किया है, उसने अपनी सिद्धदशा का ही निर्णय किया है और वह सिद्ध होगा ही.....

इस 'प्रवचनसार' शास्त्र की शुरुआत में श्रीकुन्दकुन्दभगवान माङ्गलिकरूप से नमस्कार करते हुए कहते हैं कि, 'उन सभी को साथ में तथा प्रत्येक-प्रत्येक को, फिर वन्दन करूँ मैं मनुष्यक्षेत्र में वर्तते अरहन्त को।' जिनको स्वयं नमस्कार करते हैं, उनको भी वर्तमानरूप हाजिर करके नमस्कार करते हैं। आचार्यप्रभु कहते हैं कि यह मेरी मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर के समान, परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का महोत्सव है। **इस स्वयंवर मण्डप में अनन्त सिद्धों -अरहन्तों-आचार्यों आदि पञ्च परमेष्ठियों को वर्तमानरूप करता हूँ; अर्थात्, अपूर्ण और पूर्णदशा के बीच का अन्तर निकालकर, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। अहा! कितना अपूर्व जोर है। मानो कि पञ्च परमेष्ठी भगवन्त सामने साक्षात् विराजमान हैं और स्वयं उनकी उपस्थिति में मोक्षदशा को पा रहे हैं — ऐसे भाव उतारे हैं।**

'पहले हो गये, उन सभी को वर्तमान में हाजिर करता हूँ' — इसमें वास्तव में तो पर्याय और द्रव्य के बीच का अन्तर निकालकर, सामान्य-विशेष को एक किया है — इसमें स्वभावदृष्टि का जोर है। 'भूत में हुए उन सिद्धों को वर्तमान करता हूँ' — इसमें भी वास्तव में पर की सामर्थ्य को जानता नहीं, परन्तु स्वयं की पर्याय की पूर्ण सामर्थ्य को, वर्तमानरूप करके प्रतीति में लेता है।

श्री महावीर भगवन्त को अत्यन्त शुद्धदशा (मुक्ति) कहीं बाहर में नहीं हुई थी परन्तु आत्मा में ही हुई थी। **'पावापुरी में भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया और ऊर्ध्वश्रेणी करके, मोक्ष में गये' यह तो बाहर में व्यवहार का कथन है। 'ऊँचे क्षेत्र में जाने के बाद, आत्मा की मुक्ति हुई' — ऐसा नहीं है, किन्तु आत्मा स्वयं ही मुक्तदशास्वरूप हो गया है।**

यहाँ आत्मा की सिद्धदशा की सामर्थ्य की महिमा हो रही है, किन्तु उस दशा की सामर्थ्य को कौन स्वीकारता है? कौन उसकी प्रतीति करता है? पुण्य-पापरहित, क्रमरहित, प्रत्येक समय में जिस आत्मा ने प्रतीति और महिमा की, वह आत्मा अपने निर्मल स्वभावज्ञान के अलावा किसका आदर करेगा? किसे मानेगा? **यदि स्वयं के सिद्धसमान स्वभाव-सामर्थ्य का विश्वास करे, तभी उसे सिद्धभगवान को देखना आया है। सिद्धभगवान को देखनेवाला और उनकी महिमा करनेवाला वास्तव में अपनी, सिद्धभगवान की सामर्थ्य को जाननेरूप पर्याय की सामर्थ्य को ही देखता है, और उसकी ही महिमा करता है। परमार्थ से कोई जीव, पर को जानता नहीं, अथवा पर की महिमा करता नहीं।**

ध्यान रखना! आज का घोलन अलग ही प्रकार का आता है। इन भावों का विचार कर, इनका खूब घोलन करने जैसा है। आज विषय अच्छा आ गया है। अन्दर का घोलन बाहर आता है। ये दीपावली के माङ्गलिक गाये जाते हैं।

स्वकाल को (अपनी अवस्था को), स्वभाव की ओर झुकाना,

यही सच्ची 'दि-वाली' है। 'दि' = दिन - काल; उसे अपने स्वभाव-सन्मुख झुकाए, तभी सच्ची दिवाली कहलायेगी; अर्थात्, अपनी अवस्था को स्वभाव की ओर झुकाकर, जो केवलज्ञानरूपी सुप्रभात प्रगटा, वही महा-महोत्सव है।

भगवानश्री मोक्ष पधारे, उसमें इस आत्मा को क्या? तथा देवों ने रत्न-दीपकों आदि से महा-महोत्सव किया, उसमें भी इस आत्मा को क्या? पर के कारण इस आत्मा को लाभ नहीं है परन्तु सिद्धभगवान की सामर्थ्य को प्रतीति में लेकर, जिसने उसकी ही अन्तर से महिमा की, वह 'सिद्ध का लघुनन्दन' हो गया, वह अल्प काल में सिद्ध होगा ही।

जिसने अपने ज्ञान में सिद्धभगवान का निर्णय किया, उसे सिद्धदशा के निर्णय और उसरूप स्थिरता के बीच (अर्थात्, श्रद्धा और चारित्र के बीच) भले ही अन्तर तो पड़ता है; और उस अन्तर को एकदम स्वभाव-सन्मुख होनेवाला ज्ञान, स्वीकार भी करता है परन्तु स्वयं ने जो निर्णय किया है, वह निर्णय 'स्वीकार और स्थिरता' — ऐसी दो अवस्था-भेद को भूलकर, वर्तमान पूर्ण द्रव्य को ही प्रतीति में लेता है। द्रव्यस्वभाव के स्वीकार का निर्णय, उन दो दशाओं के बीच के अन्तर को या हीनता को स्वीकार नहीं करता। भविष्य में सिद्धपर्याय प्रगट होगी — ऐसे भूत-भविष्य को याद नहीं करता, परन्तु दृष्टि के जोर से, पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद करके (भूत-भविष्य की पर्याय को द्रव्य में वर्तमान समाहित करके), सिद्धदशा को वर्तमानरूप ही करता है।

यह अपूर्वभाव कहे जाते हैं, इन भावों को आत्मा के

साथ परिणमन करानेयोग्य है; आत्मा के भाव के साथ इन भावों को जोड़ देना।

जिसे सिद्धभगवान की भविष्य काल की पर्याय की सामर्थ्य का स्वीकार आया, उसे स्वपर्याय के स्वसन्मुखपने द्वारा विकल्प टूटे बिना नहीं रहेंगे।

महोत्सव करते हुए पहले स्वभाव की महिमा आनी चाहिए; स्वभाव को भूलकर अकेले बाहर की महिमा करे, वह आत्मा को लाभ का कारण नहीं है परन्तु स्वभाव की महिमासहित बाहर में भी महोत्सव मनावे तो उसमें उपादान-निमित्त का सुमेल है। अपने स्वभाव की महिमा करे, वहाँ बाहर में भी भगवान के निर्वाणकल्याणक महोत्सव इत्यादि निमित्त होते हैं। एक अपने सिद्धस्वभाव को स्वीकार करने से, उसमें अनन्त सिद्धों का स्वीकार आ गया है। यह सामर्थ्य, ज्ञान की कला का है; बाहर के ठाठ-बाट का नहीं।

लाखों-करोड़ों लोग आज के दिन की महिमा करते हैं और 'अहो! आज प्रभुजी मुक्त हुए' — इस प्रकार बहुत को पर की महिमा आती है परन्तु उन सबको जाननेवाली अपनी ज्ञानसामर्थ्य का माहात्म्य नहीं आता! (यद्यपि) अपनी ज्ञानसामर्थ्य स्वयं के ख्याल में तो आती है परन्तु अन्तर में स्वयं उसका विश्वास या रुचि नहीं करता, परिणति को स्व-सामर्थ्य की ओर नहीं झुकाता, किन्तु पर की महिमा करने में रुकता है; इसलिए केवलज्ञानदशा प्रगट नहीं होती।

वास्तविकरूप से प्रत्येक समय, ज्ञान की ही क्रिया होती है। जहाँ-जहाँ मन-वचन-काय की क्रिया होती है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र

ज्ञान की क्रिया होती है। मन-वचन-काया तो जड़ है। भगवान के प्रति मन से विकल्प, वचन से स्तुति, या शरीर से वन्दन होता है, उसमें किस समय, ज्ञान का कार्य नहीं है? किस आत्मप्रदेश में ज्ञान का कार्य नहीं है? प्रत्येक समय, ज्ञान तो सर्वात्म प्रदेशों में अपना ही कार्य करता है। ज्ञान, सर्वव्यापक है। विकल्प के समय भी उससे पृथक् रहकर वह अपना कार्य करता है।

भगवान की ओर के लक्ष्य के समय वस्तुतः तो ज्ञान, भगवान को नहीं जानता, परन्तु भगवान का निर्णय करनेवाली जो ज्ञानसामर्थ्य है, उस ज्ञानसामर्थ्य को ही स्वयं जानता है। जिस ज्ञान के ख्याल में भगवान की सामर्थ्य आयी, उस ज्ञान की सामर्थ्य का जिसे माहात्म्य न आवे, वह अन्तर-सन्मुखता करके भगवान किस प्रकार होगा? स्वरूप-सन्मुख होकर देखे तो प्रत्येक समय अपने ज्ञान का ही स्वयं माहात्म्य करता है; कभी भी पर का माहात्म्य नहीं करता। अपने ज्ञान में सिद्धपर्याय की प्रतीति करके उसे ही जो धन्य मानता है, वह दूसरे किसी को भी धन्य कैसे मानेगा? जिसने सिद्धदशा और केवलज्ञान को धन्य माना, वह इन्द्र की सामग्री को, रत्न के दीपकों को, पुण्य के विकल्प इत्यादि किसी को भी धन्य नहीं मानेगा।

पूर्णानन्दीस्वरूप प्रसन्न होकर केवलज्ञान प्रगटे, वह धन्य है! पुण्य से स्वभाव की महत्ता नहीं है। क्या धर्म का फल, पुण्य होता है? जैसे, छह खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती राजा रीझे और प्रसन्न होकर कहे कि मेरे योग्य कोई कार्य बतला; माँग, जितना चाहिए, उतना माँग! तू जो माँगेगा वह मैं देने को समर्थ हूँ; इसलिए मेरे से

जो माँगना हो वह माँग! ऐसा चक्रवर्ती राजा प्रसन्न हो और माँगने को कहे, तब उससे कहे कि यह मेरे आँगने का कचरा निकाल डालो! तो यह कोई माँगना कहलाता है? अरे भाई! तूने क्या माँगा? कचरा निकालने का कार्य क्या वह चक्रवर्ती राजा से लिया जाता होगा?

उसी प्रकार यहाँ सम्पूर्ण आत्मस्वभाव प्रसन्न होता है; किसे प्रसन्न होता है? जिस जीव ने सिद्धभगवान का निर्णय किया और अपने वैसे परिपूर्ण स्वभाव का निर्णय किया, उस जीव को स्वभाव प्रसन्न होता है। जहाँ स्वभाव को निर्णय में लिया, वहाँ पूर्ण स्वभाव प्रसन्न होकर कहता है कि माँग! माँग!! जो दशा चाहिए वह देने को तैयार हूँ। तुझसे हुआ जा सके उतना हो; जितनी हद तक होना हो, उतनी हद तक हो; पूरा सिद्धपद माँग! मैं इसी क्षण वह तुझे दूँगा... इस प्रकार जिस पर्यायरूप स्वयं होना चाहता है, वह पर्याय स्वभाव में से प्रगट हो सकती है। जहाँ पूरा स्वभाव रीझा है, वहाँ केवलज्ञान और सिद्धपदरूप होने के बदले जो ऐसा कहता है कि मुझे तो पुण्यरूप होना है! अरे...रे...! उसे माँगना ही नहीं आया!! चक्रवर्ती को कचरा निकालने को कहे, वैसे ही पूर्ण ज्ञानस्वभाव से उसने विकार के छिलकों की माँग की!! भाई रे! तूने क्या माँगा? जिसने पूर्ण स्वभाव नहीं जाना, वह पुण्य की माँग करता है। पूर्ण स्वभाव में तो एक समय में केवलज्ञान और सिद्धपदरूप होने की ताकत है; तुझसे हुआ जा सके, उतना हो! 'पुण्यरूप होना है' — ऐसा मत माँग! सिद्धरूप होने की भावना कर! और जितना हो सके उतना हो! अस्थिरता रह जाये, उसे जान... परन्तु उसरूप होने की भावना मत कर!

पर्याय की सामर्थ्य अपरिमित है, वह यहाँ बतलाना है। द्रव्य-गुण तो पूर्ण हैं ही, परन्तु उसकी पूर्णता को स्वीकार करनेवाला कौन है ? द्रव्य-गुण पूर्ण और वर्तमान पर्याय भी पूरी है; उस पर्याय की जो अनन्त सामर्थ्य है, उस सामर्थ्य को तो ज्ञान की पर्याय ही जानती है। यद्यपि जाननेवाले ज्ञान का उपयोग तो असंख्य समय का है परन्तु 'असंख्य समय में पूर्ण सामर्थ्य है' — ऐसा वह नहीं जानता, परन्तु 'प्रत्येक समय की अवस्था में पूरी-पूरी सामर्थ्य है' — ऐसा वह जानता है और उसकी एक समय में प्रतीति करता है। पूर्ण को ज्ञान में लेने में असंख्य समय लगते हैं परन्तु उसकी प्रतीति तो एक ही समय में है।

भगवान को पूर्णदशा प्रगट हुई, उस पूर्णदशा में पूरा-पूरा ज्ञान और आनन्द-सामर्थ्य एक समय में है — ऐसा जिस पर्याय ने स्वीकार किया, उसका भी अनन्त माहात्म्य है तो फिर द्रव्य-गुण का तो क्या माहात्म्य करना!! जिस जीव ने अपनी पर्याय में सिद्ध का स्वीकार किया, उसने सूक्ष्मता से तो अपने आत्मा के साथ सिद्धदशा की एकता की है। उसमें और श्री महावीर में कहीं अन्तर नहीं रहेगा।

इस बात की हाँ कौन करता है ? किसका ज्ञान यह स्वीकार करता है ? इस बात को प्रतीति में लेनेवाला कौन है ? जिसे अपने सत् में यह बात जमी, उसको पर की पराधीनता नहीं रहती। अहो ! भवरहित हो गये भगवान को जिसने अपने निर्णय में बैठाया, उसे भवरहित भाव का कितना हर्ष और कितना उत्साह ! उसे अब भव होंगे ? यदि सिद्धभगवान को भव हों तो उसे; अर्थात्, भवरहित

भगवान को जिसने स्वीकार किया, उसे कैसे भव हों ? तात्पर्य यह है कि उसे भव होते ही नहीं। सिद्धदशा को देरी लगे, वह यहाँ पोसाये ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय में सिद्ध को समाहित किया और अब अपनी सिद्धदशा को देरी लगे, यह कैसे चले ? थाली तैयार की, थाली पर भोजन करने बैठाया और अब खाली थाली खड़खड़ बजे; अर्थात्, परोसने में देर लगे, वह पोसाता नहीं है। इसी प्रकार अपनी पर्याय में सिद्धभगवान को स्वीकार किया, अपनी पर्यायरूपी थाली तैयार की और अब सिद्धदशारूपी पकवान परोसने में देरी लगे, वह पोसाता नहीं है। अहो... ! देखो तो सही ! इसमें तो निर्णय और केवलज्ञान के बीच के अन्तर को तोड़ डाले — इतना जोर है।

जिसके ज्ञान में केवलज्ञान की परिपूर्ण सामर्थ्य ज्ञात हुई और उसी की महिमा हुई, उसे निर्णयरूप से केवलज्ञान प्रगट हो गया है। केवलज्ञान बदले तो उसका निर्णय बदले ! भले ही अभी वर्तमान उघाड़ केवलज्ञान जितना नहीं है, तथापि वर्तमान निर्णय में तो सम्पूर्ण केवलज्ञान आ गया है। 'विचारदशा से केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ है' (श्रीमद्‌जी) ने ऐसा जहाँ कहा है, वहाँ भी यही आशय है। केवलज्ञान का निर्णय किया, उसका केवलज्ञान वापस फिरता ही नहीं — ऐसी अप्रतिहतभाव की ही बात है। 'यह' तो अपने ही अन्दर के भाव घोले हैं; पर की कोई महिमा नहीं करता; सब अपने ही भावों को घोल रहे हैं।

'सुखी कैसे हो ?' उसकी यह बात चलती है। जो सिद्ध हो गये हैं, उनके लिए यह बात नहीं है परन्तु जो सिद्ध होनेवाले हैं, उनके सिद्ध होने के लिए यह बात है। सिद्धदशा में भगवान को

अगुरुलघुगुण के कारण उत्पाद-व्यय होता है, उन्हें तो प्रत्येक समय पूर्ण आनन्द है, तथापि पर्याय तो बदला ही करती है; अर्थात्, पहली पर्याय का जो आनन्द है, वही आनन्द दूसरी पर्याय में नहीं है परन्तु उसके जैसा ही दूसरी पर्याय का दूसरा आनन्द है; इस प्रकार सिद्धदशा में आनन्द की जाति नहीं बदलती, परन्तु काल बदल जाता है।

यहाँ किसी को ऐसा लगता है कि सिद्धभगवान को आनन्द है, उसमें इस आत्मा को क्या? उससे कहते हैं कि भाई! सिद्ध को आनन्द है — ऐसा निर्णय कौन करता है? निर्णय करनेवाला स्वयं है या दूसरा? निर्णय करनेवाले ने अपने ज्ञान की ही महिमा की है और उसमें सिद्ध तथा केवलज्ञानी, ये तो सब निमित्तरूप से आये हैं।

किसके ज्ञान में यह बात समझ में आती है? यह बात किसका ज्ञान स्वीकार करता है? भगवान का ज्ञान स्वीकार करता है या अपना ज्ञान स्वीकार करता है? अपना ही ज्ञान स्वीकार करता है। पुण्य-पाप के भाव में अटकनेवाला ज्ञान, यह स्वीकार नहीं करता परन्तु पुण्य-पापरहित सिद्धदशा की ओर ढला हुआ ज्ञान, यह स्वीकार करता है। अरूपी चैतन्य आत्मतेज के माहात्म्य के समक्ष, जगत् में किसी का माहात्म्य नहीं है। आत्मा का चैतन्यतेज, केवलज्ञानरूप परिणमित होता है, तब तो चार क्षायोपशमिक ज्ञानों का भी माहात्म्य नहीं रहता; ऐसा चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा स्वयं ही स्वतन्त्ररूप से परिपूर्ण ज्ञान और सुखरूप होता है; इसीलिए वही स्वयंभू है। स्वयंभू; अर्थात्, स्वतन्त्ररूप से आत्मा का ज्ञान-सौख्यरूप परिणमन, वही महिमावन्त माङ्गलिक है।

जिसने एक आत्मा की परिपूर्ण दशा, ज्ञान में स्वीकार की है, उसने अपने ज्ञान में अनन्त सिद्धात्माओं का स्वीकार किया और अपना भी वैसा ही स्वरूप है — ऐसा स्वीकार किया; इसलिए उसने भंग-भेद का नकार/निषेध किया। जैसी मेरे ज्ञान में ज्ञात हुई है, वैसी ही सिद्धदशास्वरूप परिणमित होना, वही मेरा स्वभाव है। हीनदशा या भंग-भेदरूप परिणमित होना, मेरा स्वरूप नहीं है। **'मैं सिद्ध को जानता हूँ' — ऐसा बोला जाता है परन्तु वास्तव में तो 'मैं मेरी ही पर्याय को जानता हूँ' उसमें वे ज्ञात हो जाते हैं — ऐसी मेरी सामर्थ्य है! इस प्रकार स्व का बहुमान आना चाहिए।**

प्रत्येक जीव, यद्यपि अपनी ही पर्याय की सामर्थ्य को जानता है परन्तु उसे अपने ज्ञान का भरोसा नहीं आता; इसलिए वह पर का बहुमान करने में रुकता है और स्व को भूल जाता है परन्तु 'मैं मेरी ज्ञानसामर्थ्य को जानता हूँ, मैं पर को वास्तव में नहीं जानता और मेरी ज्ञानसामर्थ्य तो परिपूर्ण है।' इस प्रकार स्व की महिमा आवे तो किसी पर की महिमा नहीं आये।

आत्मा स्वयं असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड है, उसे सम्हालने से तो पूरा पिण्ड, पर्याय में आ जाता है। एक समय की अवस्था में अनन्त गुण का पिण्ड वर्तमानरूप आ जाता है और उसका एक समय में ख्याल करनेवाली मेरी पर्याय है; इस प्रकार ज्ञान की अपनी अवस्था की सामर्थ्य के गीत गाये जाते हैं!

अहो! आज तो अपूर्व भाव आये!! आत्मा में इन भावों

को घुलाने जैसा है। पौन घण्टे एक धारा अपूर्व व्याख्या आयी है। ऐसी सरस बात किसी समय नहीं हुई। आज तो कोई अलग ही प्रकार से घोलन हुआ है... अलौकिक अमृत निकला है!!... इस प्रकार अपूर्व माङ्गलिक हुआ.... ●●

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का अति भाववाही प्रासङ्गिक प्रवचन, दिनाङ्क 04.11.1945]

अहो! मेरा सुन्दर तत्त्व....

ऋषभादि-महावीरपर्यन्त समस्त जिनवर भगवन्त, परम योग -भक्ति द्वारा ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। अहा! मोक्ष तो परमानन्द से तृप्त दशा है। परम आनन्दमय तत्त्व में जो परिणति ढल गयी है, वह स्वयं आनन्दमय हो गयी है और भवदु:ख से छूट गयी है। इसलिए हे मोक्षसुख के अभिलाषी भव्यजन! तू भी अपनी परिणति को आत्मा में जोड़कर ऐसी योगभक्ति कर! यह योगभक्ति तुझे परम वीतराग सुख प्रदान करनेवाली है।

अहो! सुन्दर आनन्द झरता मेरा यह तत्त्व, परम उत्तम है; इसकी भावना से अपूर्व सुख उत्पन्न होता है। अहा! ऐसा सहज सुखरूप मेरा तत्त्व, उसकी भावना में तत्पर मुझे अब जगत के दूसरे किसी पदार्थ की स्पृहा है? इसलिए —

'गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके, ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं, अब राग-द्वेष की परम्परारूप परिणत चित्त को छोड़कर, शुद्ध ध्यान द्वारा शान्त-एकाग्र किये हुए मन द्वारा, आनन्दात्मक तत्त्व में ही स्थिर रहता हूँ — परमब्रह्म परमात्मा में लीन रहता हूँ।'

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

शासननायक का अनन्त उपकार

दीपावली एक पावन पर्व है। यह चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान के मोक्षकल्याणक का पावन दिवस है।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में इस भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान, पावापुरी में समश्रेणी से मोक्ष पधारे और कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रात:काल स्वर्ग लोक से आकर इन्द्रों तथा देवों ने निर्वाणकल्याणक-महोत्सव मनाया। उस उत्सव के प्रतीकरूप में लोग आज के दिन 'दीपावली पर्व' मनाते हैं।

प्रश्न : आज वीर निर्वाण दिन के अवसर पर दो शब्द कहिये।

उत्तर : श्री महावीर तीर्थाधिनाथ, आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द में और केवलज्ञान में परिणमित थे।

महावीर का जीव पहले पुरुरवा नामक भील था, उसी भव में से उसका सुधार प्रारम्भ हो गया था; बीच में दूसरे अनेक भव किये थे। अन्तिम भव में भरतक्षेत्र के मगधदेश की कुण्डलपुरी में सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ से चौबीसवें तीर्थङ्कर के रूप में अवतरित हुए थे। पुरुरवा, भीलों का राजा था। वन में एक

मुनि ध्यानस्थ बैठे थे। दूर से उनको मृग मानकर पुरुरवा, बाण छोड़ने की तैयारी में था, तभी उसकी पत्नी ने कहा : यह तो कोई महान सन्त — मुनिराज हैं। भील ने बाण रख दिया और मुनिराज के पास जाकर भक्तिपूर्वक वन्दन किया। मुनिराज का उपदेश सुनकर मद्य, माँस और मधु का त्यागव्रत धारण कर लिया; वह तो शुभभाव था, धर्म नहीं था। वहाँ से उसके सुधार का प्रारम्भ हुआ। वहाँ से मरकर वह देव होता है, पश्चात् क्रमशः अनेक भव करके सिंह का भव धारण करता है। यह भव 'महावीर' होने से पहले का दसवाँ भव है।

एक बार वह सिंह, हिरन को फाड़कर खा रहा था, तब आकाश में से दो चारणऋद्धिधारी मुनिवर उतरते हैं और सिंह को सम्बोधित करते हैं कि —

'हे वनराज! तुम यह क्या कर रहे हो? हमने तो भगवान के पास सुना है कि तुम दसवें भव में महावीर तीर्थङ्कर होनेवाले हो। नरकगति में ले जानेवाली ऐसी घोर हिंसा तुम्हें शोभा नहीं देती। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा भीतर विराजमान है, उसे अन्तर में दृष्टि डालकर ग्रहण करो! उसकी अनुभूति करो! सम्यक्त्व प्राप्त करने का तुम्हारा अवसर आ गया है।'

अहा, देखो! भीतर उपादान तैयार होता है, तब प्राकृतिक ही निमित्त का योग कैसा मिल जाता है! मुनिराज की भाषा कैसी होती है? भाषा भले ही चाहे जैसी हो परन्तु उसका भाव बराबर समझ गया। उपदेश सुनते हुए सिंह की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और अन्तर्मुख-दृष्टिपूर्वक वह सिंह, सम्यग्दर्शन एवं निर्विकल्प

स्वानुभूति प्राप्त कर लेता है। अरे! अभी तो पंजों के नीचे मारा हुआ हिरन पड़ा है, पेट में भी माँस चला गया है — ऐसी स्थिति में भी जीव उन सबसे अपनी परिणति हटाकर, अन्तर में पुरुषार्थपूर्वक साधना का कार्य कर लेता है! **अहा! जहाँ अन्तरङ्ग पात्रता हो, वहाँ निमित्त का योग सहज ही बन जाता है। निमित्त मिलाना नहीं पड़ते और निमित्त से कार्य भी नहीं होता।** सिंह की अपनी उपादानभूत तैयारी हुई, वहाँ आकाशमार्ग से जाते हुए मुनिवर उस घने जंगल में उतरे और कहा कि — हे मृगराज! तुम भगवान हो, जिनस्वरूप हो।

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन;
मत मदिरा के पान सों, मतवाला समुझै न।
जिन सोही है आतमा, अन्य होई सो कर्म;
कर्म कटै सो जिनवचन, तत्त्वज्ञानी को मर्म।

— प्रभु! तू जिन है न! वीतरागमूर्ति भगवान है न! — इतना सुनते ही सिंह अन्तर में उतर गया और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। आँखों से अश्रुधारा बहती है और अन्तर में अशुद्धता की धारा अंशतः लुप्त हो जाती है–नष्ट हो जाती है तथा स्वानुभूतियुक्त शुद्धता की धारा प्रवाहित होती है।

साधन की अविच्छिन्न धारासहित महावीर का जीव, सिंहपर्याय छोड़कर बीच में देव और मनुष्य के पाँच भव करके धातकीखण्ड के पूर्व विदेहक्षेत्र में चक्रवर्ती का भव धारण करता है; तत्पश्चात् पूर्व तीसरे भव में जम्बूद्वीप में नन्दराजा होता है और मुनिदशा धारण करके तीर्थङ्करनामकर्म बाँधता है। वहाँ से सोलहवें स्वर्ग में

अच्युतेन्द्ररूप से बाईस सागर की आयु पूर्ण करके, जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगधदेश की कुण्डलपुरी के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ में आषाढ़ शुक्ल छठवीं के दिन आते हैं और देव, गर्भकल्याणक का महान उत्सव मनाते हैं। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन जन्मकल्याणक; तीस वर्ष की आयु में कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के पिछले प्रहर में निर्वाणकल्याणक — यह पाँचों कल्याणक इन्द्रों और देवों ने स्वर्ग से मध्यलोक में आकर अति आनन्दोल्लासपूर्वक मनाये थे। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन वीरनिर्वाण का महामहोत्सव हुआ। उस दीपावली के वार्षिक दिवस पर किसी ने बहिन से कहा कि — आज वीर निर्वाण दिन के अवसर पर कृपा करके दो शब्द कहें। तब बहिन बोली कि — श्री महावीर तीर्थाधिनाथ, आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द में तथा केवलज्ञान में परिणमते थे।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर चतुर्थ गुणस्थान में सिद्ध की जाति का अलौकिक अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है परन्तु वह अति अल्प है, और जब यथार्थ दिगम्बर मुनिपना प्रगट होता है, तब अन्तर में स्वरूपस्थिरता की अत्यन्त वृद्धि हो जाने से, उस अलौकिक आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन होता है, तथापि अभी आनन्द पूर्ण प्रगट नहीं हुआ है। पूर्ण अलौकिक आनन्द तो केवलज्ञानदशा — चारों घातिकर्मों का क्षय होने पर अनन्त चतुष्टयरूप अरहन्तदशा प्राप्त हो, तब प्रगट होता है। चतुर्थ गुणस्थान में अंशत: आनन्द; छठवें-सातवें में प्रचुर आनन्द; बारहवें में वीतराग-आनन्द; तेरहवें में क्षायिक अनन्त आनन्त और सिद्ध में क्षायिक अव्याबाध आनन्द होता है।

वीरप्रभु पूर्ण आनन्द प्राप्त करने से पूर्व प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप मुनिदशा में थे। अहा! मुनिदशा किसे कहें! जो अन्तर्बाह्य निर्ग्रन्थ सन्त परमशुद्धोपयोगभूमिका को प्राप्त हों, उन्हें मुनि कहते हैं। वर्तमान में तो दिगम्बर साधु होकर कहते हैं कि इस पञ्चम काल में शुद्धोपयोग नहीं होता, मात्र शुभोपयोग होता है। अरे भाई! साधु होकर तू यह क्या कहता है? वर्तमान पञ्चम काल में यदि मात्र शुभोपयोग ही हो तो क्या धर्म नहीं है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने तो 'पञ्चम काल में धर्मध्यानरूप शुद्धोपयोग होता है' — ऐसा मोक्षप्राभृत में कहा है —

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाऊण जंति सुरलोए।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति॥77॥

(***अर्थात्*** आज भी त्रिरत्न से शुद्ध जीव, आत्मा को ध्याकर स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं व लौकान्तिक में देवपना प्राप्त करते हैं; वहाँ से च्युत होकर मोक्ष जाते हैं।)

प्रवचनसार में कहा है कि सच्चे भावलिङ्गी आचार्य, उपाध्याय और साधु — सब परम शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त होते हैं। भूमिकानुसार व्रतादि के विकल्प आते हैं परन्तु वे हेयरूप से वर्तते हैं, उनको वे विशेष स्वरूपस्थिरता द्वारा लाँघ जायेंगे।

आज उन ने सिद्धदशा प्राप्त की।

वीरप्रभु ने प्रचुर आनन्द के संवेदनरूप शुद्धोपयोगदशा को प्राप्त करके, साढ़े बारह वर्ष की उग्र स्वरूपसाधना के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त किया। पूर्ण आनन्द तथा केवलज्ञानपरिणति को प्राप्त वीरप्रभु ने दिव्यध्वनि द्वारा तीस वर्ष तक धर्म-प्रवर्तन के

पश्चात्, आज-कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के पिछले प्रहर में सिद्धदशा प्रगट की।

अरे..रे! लोगों ने वर्तमान में मार्ग में बहुत गड़बड़ी कर दी है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा का दिव्यध्वनि में कथन है कि — जहाँ परमात्मदशा प्रगट होती है, वहाँ आत्मा के पूर्ण अलौकिक आनन्द एवं केवलज्ञानरूप परिणमन होता है। उन केवलज्ञानी परमात्मा की देहमुद्रा नग्नदशारूप होती है। अरे! जो सच्चे भावलिङ्गी सन्त हैं, उनको भी वस्त्र नहीं होते, तब केवली परमात्मा को वस्त्र कैसे होंगे? वीरप्रभु ने प्रथम प्रचुर स्वसंवेदनयुक्त नग्नदशारूप वीतराग मुनिपना अङ्गीकार किया, पश्चात् पूर्ण अलौकिक आत्मिक आनन्दयुक्त केवलज्ञान प्राप्त हुआ और आज अशरीरी सिद्धदशा प्रगट की।

चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपद को प्राप्त हुए, चैतन्य पिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूप से सिद्धालय में विराज गये; अब सदा समाधिसुख-आदि अनन्त गुणों में परिणमन करते रहेंगे।

भगवान आत्मा तो ज्ञानशरीरी है। यह दृश्यमान शरीर तो मिट्टी का पुतला, जड़, अचेतन, धूल है। अरे! पुण्य-पाप के भाव हैं, वह भी कार्मणशरीर की झिलमिलाहट है; आत्मा का स्वरूप नहीं है। पूर्णानन्द और केवलज्ञानस्वरूप चैतन्यशरीरी महावीर प्रभु ने आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपद — चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया। अ, इ, उ, ऋ, लृ — इन पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चार जितने समय के पश्चात् तुरन्त ही चैतन्यपिण्ड, शरीर से पृथक् होकर उसी समय पावापुरी की समश्रेणी में उनका शुद्धात्मा ऊर्ध्वगमन करके

लोक के अग्रभाग में अवस्थित हो गया — पूर्ण अशरीरी चिद्रूप होकर केवल चैतन्यबिम्बरूप से सिद्धालय में विराज गया; अब वहाँ सादि-अनन्त काल तक समाधिसुखादि अनन्त गुणों में परिणमन करता रहेगा। श्रीमद् ने अपूर्व अवसर में कहा है न! कि —

पूर्व प्रयोगादि कारण के योग से,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो;
सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व०

सिद्धभगवान, सादि-अनन्त काल क्या करते हैं? — तो कहते हैं कि क्षायिक अनन्त समाधि, शान्ति, सुख, ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनन्त गुणों की परिपूर्ण पर्यायरूप से निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। यहाँ संसार में भी जीव और क्या कर सकता है? क्या शरीर, वाणी अथवा स्त्री-पुत्रादि का कुछ कर सकता है? नहीं; मात्र असमाधि, अशान्ति और दुःख इत्यादिरूप से परिणमित होता रहता है। वीरप्रभु अब सादि-अनन्त समाधिसुखादि अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायोंरूप से निरन्तर परिणमित होते रहेंगे।

आज भरतक्षेत्र से त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थङ्कर भगवान का वियोग हुआ, वीरप्रभु का आज विरह पड़ा।

वृषभदेव भगवान, कैलाश-अष्टापद-पर्वत से मोक्ष पधारते हैं तब 'अरे! भरतक्षेत्र में साक्षात् भगवान का वियोग हुआ' — ऐसे विरहवेदन से भरतचक्रवर्ती के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होती है। सौधर्म इन्द्र कहते हैं — अरे मित्र भरत! यह विलाप कैसा!

तुम भी चरमशरीरी हो, इसी भव में भगवान के समान मुक्ति प्राप्त करनेवाले हो।

भरत खिन्न हृदय से कहते हैं — हे इन्द्र! सुनो! हमें अपना पता है, इसी भव में हमारा मोक्ष निश्चित है, तथापि वर्तमान में हमारी भूमिका ऐसी है, जिससे भगवान के विरह की वेदनारूप प्रशस्तराग आ जाता है। भगवान के प्रति जो भाव है, वह भी शुभराग है; धर्म नहीं, तथापि जब तक वीतरागदशा न हो, तब तक ऐसा प्रशस्तराग, सम्यक्त्वी तो क्या — मुनि को भी आये बिना नहीं रहता परन्तु है वह बन्ध का कारण; शुभाशुभरहित शुद्धभाव, एक ही मोक्ष का कारण है। यहाँ कहते हैं कि त्रिलोकीनाथ वीरप्रभु भरतक्षेत्र छोड़कर चले गये, तीर्थङ्कर सूर्य अस्त हो गया, साक्षात् अरहन्त तीर्थङ्कर परमात्मा का विरह पड़ा।

इन्द्रों ने ऊपर से उतरकर आज निर्वाण महोत्सव मनाया।

प्रथम स्वर्ग का सौधर्म इन्द्र और उसकी शची इन्द्राणी — दोनों आत्मज्ञानी तथा एकावतारी होते हैं। शची का जीव जब देवी की पर्याय में उत्पन्न हुआ, तब मिथ्यादृष्टि था क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव, स्त्रीपर्याय में उत्पन्न नहीं होता — ऐसा आगमोक्त नियम है। सौधर्म इन्द्र को अपनी दो सागरप्रमाण आयु काल में असंख्य तीर्थङ्करों के पञ्च कल्याणक मनाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दो सागर में पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र में असंख्य तीर्थङ्कर नहीं होते,परन्तु पाँच विदेह में, वहाँ तीर्थङ्करों की उत्पत्ति का प्रवाह अविच्छिन्न होने से, होते हैं।

अहा! बत्तीस लाख विमानों के स्वामित्ववाला और

असंख्य देवों का लाड़ला प्रथम स्वर्ग का सौधर्म इन्द्र और उसके साथ अन्य स्वर्गों के इन्द्र तथा असंख्य देवादि ने स्वर्गलोक से उतरकर पावापुरी में आज के दिन श्री महावीरप्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाया था।

देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाणकल्याणक महोत्सव कैसा दिव्य होगा?

अहा! जिसे स्वर्ग से आकर देव और इन्द्र मनाते हों, उस महोत्सव की दिव्यता का तो क्या कहना!

उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवाली के दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावली महोत्सव मनाते हैं।

देवों द्वारा मनाये गये महावीर निर्वाण–महोत्सव का अनुसरण करके आज भी लोगों में दीपमालाएँ प्रज्वलित करके तथा आतिशबाजी द्वारा दीपोत्सव महोत्सव मनाने की प्रथा चली आ रही है।

आज वीरप्रभु मोक्ष पधारे।

2504 वर्ष पूर्व* कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातःकाल, अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के पिछले प्रहर में इस भरतक्षेत्र के चौबीसवें / चरम तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान, मगध देश की पावापुरी से मोक्ष पधारे।

गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अन्तर में गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

---

* यह प्रवचन सन् 1978 का है, तद्नुसार यह गणना समझना चाहिए।

गणधर श्री गौतमस्वामी शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त तो थे ही। ज्यों ही भगवान का मोक्ष हुआ, वहाँ तुरन्त ही वे अन्तर में— सम्यक्त्व के ध्येयरूप पूर्णानन्द आदि सामर्थ्य से भरपूर ज्ञायक ध्रुवधाम में—स्थिरतापरिणति में गहरे उतर गये और उसी दिन पूर्ण वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए।

आत्मा के स्वक्षेत्र में रहकर लोकालोक को जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्व-परप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्मा के असंख्य प्रदेशों में आनन्दादि अनन्त गुणों की अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

स्व-पर यथातथ प्रकाशक स्वानुभूतिसहित मति-श्रुतज्ञान तो उनको पहले से प्रगट हुआ है; यह तो पूर्ण ज्ञान की बात है। द्रव्य और गुण से तो भगवान आत्मा तीनों काल परिपूर्ण है; पर्याय में जो अपूर्णता थी, वह वीतरागता और केवलज्ञान प्राप्त होने पर निकल गयी। आत्मा का स्वक्षेत्र असंख्यप्रदेशी है; उसमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुण विद्यमान हैं। अनन्त गुणों को रहने के लिये अनन्त प्रदेश की आवश्यकता नहीं है। आत्मा के असंख्य प्रदेश में एकसाथ रहनेवाले ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणों की प्रति समय होनेवाली अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशित हो उठीं। नीचे सम्यग्दर्शन होने पर 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' — इस न्याय से सम्यक्त्व, ज्ञान और आनन्दादि सर्व गुणों की पर्यायें प्रकाशित अवश्य हो उठी हैं, परन्तु अंशतः और वेदन में भी अल्प; मुनिवरों को भी प्रगट अवश्य हुई हैं परन्तु प्रमाण में विशेष और वेदन में अत्यन्त प्रचुर और केवली के तो अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें प्रमाण में तथा वेदन में परिपूर्णरूप से प्रकाशित हो उठी हैं।

गौतमस्वामी को अन्तर की गहराई में उतर जाने पर, आत्मा के स्वक्षेत्र में रहकर लोकालोक को जाननेवाला स्व-पर प्रकाशक अद्‌भुत ज्ञान प्रगट हुआ, आत्मा के असंख्य प्रदेशों में अनन्त गुणों की अनन्त पूर्ण पर्यायें खिल उठीं।

अभी इस पञ्चम काल में भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर भगवान का विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं।

भरतक्षेत्र में इस समय पञ्चम काल वर्त रहा है, तीर्थङ्कर या सामान्य केवली हों — ऐसा योग इस काल में नहीं है।

महाविदेहक्षेत्र में कभी तीर्थङ्कर का विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है।

विदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धरस्वामी आदि बीस तीर्थङ्कर भगवन्त तो सदैव होते हैं। वहाँ तीर्थङ्कर और केवलियों का कभी विरह नहीं होता, सदा धर्मकाल प्रवर्तता है। प्रकृति का नियम है कि छह महीना और आठ समय में छह सौ आठ जीव नियम से मोक्ष जाते हैं। भरतक्षेत्र से वर्तमान काल में कोई मोक्ष नहीं जाता, तो कहाँ से जाते हैं ? — विदेहक्षेत्र से। वहाँ सदा धर्मकाल वर्तता है। अपने पण्डितजी ने — बहिनश्री चम्पाबेन के भाई हिम्मतभाई ने, जो समवसरण स्तुति बनायी उसमें कहा है न! कि —

धर्मकाल अहो! वर्ते, धर्मक्षेत्र विदेह में;
बीस बीस जहाँ गर्जें, धोरी धर्मप्रवर्तका।

आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागों में एक-एक तीर्थङ्कर मिलाकर बीस तीर्थङ्कर विद्यमान हैं।

जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप — यह ढाई द्वीप

—45 लाख योजन प्रमाण मनुष्यक्षेत्र है। उसमें कुल पाँच विदेहक्षेत्र हैं। पाँच मेरु की पूर्व-पश्चिम दिशाओं में स्थित प्रत्येक विदेहक्षेत्र के सोलह-सोलह 'विजय' (देश) हैं। इस प्रकार विदेहक्षेत्र के कुल 160 विभाग हैं। आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागों में एक-एक तीर्थङ्कर मिलाकर बीस तीर्थङ्कर विद्यमान हैं। विदेहक्षेत्र में बीस तीर्थङ्कर तो सदा होते हैं परन्तु किसी समय प्रत्येक विभाग में तीर्थङ्कर हों तो एकसाथ 160 तीर्थङ्कर भी होते हैं।

वर्तमान में विदेहक्षेत्र के पुष्कलावती विजय में श्री सीमन्धरनाथ विचर रहे हैं और समवसरण में विराजकर दिव्यध्वनि के स्त्रोत बहा रहे हैं।

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेहक्षेत्र के पुष्कलावती विजय में श्री सीमन्धर भगवान वर्तमान में विराज रहे हैं; परमौदारिक शरीर है, 500 धनुष (2000 हाथ) ऊँची देहयष्टि है, एक करोड़ पूर्व की आयु है। (70 लाख, 56 हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है)। केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय के धारी भगवान समवसरण में विराजकर दिव्यध्वनि के धोध बहा रहे हैं। भगवान की धर्मदर्शना 'ॐ' कार दिव्यध्वनिमय होती है, उनको हमारी तरह क्रम से निकलनेवाली भाषा नहीं होती, होंठ बन्द होते हैं; समस्त शरीर से 'ॐ' ध्वनि का मधुर नाद उठता है, और उनका अतिशय ऐसा होता है कि सभाजन अपनी-अपनी भाषा में देशना का भाव समझ जाते हैं।

ॐ कार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै,
रचि आगम उपदेशै, भविकजीव संशय निवारै।

इस प्रकार अन्य विभागों में अन्य तीर्थङ्कर भगवन्त विचर रहे हैं।

अरेरे! लोगों को विश्वास कहाँ है ? अन्य विजय में भी वर्तमान में तीर्थङ्कर विचरते हैं। श्री सीमन्धरादि बीस नामोंवाले तीर्थङ्कर भगवान विदेहक्षेत्र में (काल-क्रम में नवीन-नवीन होकर) सदैव होते हैं। जगत में तीनों काल-तीनों लोक के (लोकालोक सर्व के) ज्ञाता सर्वज्ञ वीतराग अरहन्त परमात्मा का कभी विरह नहीं होता। ***जगत में यदि 'ज्ञेय' सदा है तो उसको पूर्णरूप से जाननेवाले और जानकर दिव्यध्वनि द्वारा बतलानेवाले सशरीर परमात्मा भी सदा होते हैं, उनका विरह कभी नहीं हो सकता।*** भले ही वर्तमान में भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर नहीं हैं परन्तु विदेहक्षेत्र में तो सदा होते हैं; क्योंकि वहाँ सदा धर्मकाल वर्तता है।

यद्यपि वीर भगवान निर्वाण पधारे हैं, तथापि इस पञ्चम काल में इस भरतक्षेत्र में वीर भगवान का शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है।

वीर भगवान इस समय 'णमो सिद्धाणं' — अशरीरी सिद्ध परमात्मारूप से लोकाग्र में विराजते हैं, तथापि इस भरतक्षेत्र में वर्तमान में उनका शासन प्रवर्त रहा है।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

शासननायक वीतराग-सर्वज्ञ श्री महावीर भगवान का उपकार वर्तमान में इस भरतक्षेत्र में वर्त रहा है।

वीरप्रभु के शासन में अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए, जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के रहस्य को विविध प्रकार से शास्त्रों में भर दिया है।

महावीर भगवान के शासन में ज्ञान-तप-ऋद्धिधारी समर्थ दिगम्बर सन्त-आचार्य भगवन्त हुए। दो हजार वर्ष पहले सनातन दिगम्बर जैन के श्रमणधर्म से भ्रष्ट होकर वस्त्र-पात्रधारी जो दूसरा पंथ निकला है, वह वास्तव में वीरप्रभु का मार्ग नहीं है। सूत्रपाहुड़ में भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने उन्हें उन्मार्गी कहा है —

नहिं वस्त्रधर सिद्धि लहै, वह होय तीर्थङ्कर भले,
बस नग्न मुक्तिमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं॥

सच्चे भावलिङ्गी आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु तो शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त होते हैं। षट् खण्डागम की धवला टीका में 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में जो 'लोए' और 'सव्व' शब्द हैं, वे अन्तदीपक होने से पूर्व के चारों पदों में लागू होते हैं — ऐसा कहा है और उसकी टीका करते हुए कहा है — लोक में त्रिकालवर्ती सर्व अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार हो।

श्रेणिकराजा भावी-तीर्थङ्कर हैं, वर्तमान में 84000 वर्ष की स्थिति से प्रथम नरक में हैं, वहाँ से निकलकर जम्बूद्वीप के इस भरतक्षेत्र की अगली-भविष्य की चौबीसी के प्रथम तीर्थङ्कर होनेवाले हैं। उनके भावी अरहन्तपने को अभी से नमस्कार हो सकता है।

वीरप्रभु के शासन में शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त अनेक महासमर्थ आचार्य भगवन्त हुए, जिन्होंने वीर भगवान की वाणी के विविध रहस्यों को अनेक शास्त्रों में भर दिया है।

श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य भगवन्तों ने दिव्यध्वनि के गहन रहस्यों से भरपूर परमागमों की रचना करके मुक्ति का मार्ग अद्भुत रीति से प्रकाशित किया है।

श्री कुन्दकुन्द के साथ जो 'आदि' शब्द है, उसमें से दिगम्बर भावलिङ्गी सन्त लेना; अन्य वस्त्र-पात्रधारी नहीं। उन्होंने तो, भगवान का नाम देकर कल्पित शास्त्र रचे हैं — महावीर भगवान के दो पिता और दो माताएँ; अर्जुन की पत्नी महासती द्रौपदी के पाँच पति आदि अनेक कल्पित बातें लिखी हैं। उन मार्गभ्रष्ट गुरुओं को तथा उन कल्पित शास्त्रों को मानना, वह गृहीतमिथ्यात्व है। 'आदि' शब्द में श्री उमास्वामी, कार्तिकस्वामी, पूज्यपादस्वामी, समन्तभद्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, अमृतचन्द्र, योगीन्दुदेव आदि दिगम्बर आचार्य भगवन्त लेना। आकाशस्तम्भ समान उन समर्थ आचार्य भगवन्तों ने वीरप्रभु की वाणी के मर्म को विविध प्रकार से शास्त्रों में भरकर अद्‌भुत रीति से मुक्तिमार्ग का प्रकाशन किया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने विक्रम शक के प्रारम्भ में (संवत 49 में) पूर्व विदेहक्षेत्र में जाकर भगवान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्यध्वनि का साक्षात् श्रवण किया था। वहाँ आठ दिन रहकर केवली-श्रुतकेवली के सत्समागम का लाभ लिया था। वहाँ से आकर उन्होंने इन समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकायसंग्रह, नियमसार, अष्टप्राभृत आदि शास्त्रों की रचना की है। इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ दिगम्बर सन्तों ने वीर मुखोद्‌गत दिव्यध्वनि के गम्भीर रहस्यों से भरपूर परमागमों की रचना करके मोक्ष का मार्ग अद्‌भुत रीति से प्रकाशित किया है। ●●

(बहिनश्री के वचनामृत क्रमाङ्क 432, पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन)

चैतन्य दीपक से जगमगाती दीपावली

आज तीर्थङ्कर भगवान महावीर के मोक्षगमन का पवित्र दिन है। यहाँ मोक्ष की भक्ति, अर्थात् मोक्ष की आराधना कैसे हो — उसकी बात चलती है।

भगवान का मार्ग, अर्थात् आत्मा की मुक्ति का मार्ग, अत्यन्त अन्तर्मुख है; उसमें समस्त रागादि बाह्य भावों का अत्यन्त अभाव है। जो उपयोग, आनन्दस्वरूप निज परमात्मतत्त्व में जुड़कर अन्तर्मुख हुआ, उसमें समस्त रागादि परभावों का अभाव है। **अहो! उस अन्तर्मुखपरिणति में दुःख नहीं है, भव नहीं है, द्वैत नहीं है; वह तो आनन्दरूप है, मुक्त है क्योंकि वह आनन्दमय कारणपरमात्मा के साथ जुड़ी हुई है।**

जो परिणति, अन्तर में आनन्द समुद्र भगवान आत्मा का तलस्पर्श करके आती है, वह परिणति अत्यन्त आनन्दरूप है। आत्मा को उस परिणति के साथ एकाकारूप से जोड़ना, शुद्धोपयोग भक्ति है, वह निर्वाण की भक्ति है।

जिसके असंख्य प्रदेश, अतीन्द्रिय आनन्दरस से सराबोर है — ऐसे निज आत्मा में अत्यन्त अन्तर्मुख होने पर प्रगट होनेवाली आनन्दपरिणति में राग-द्वेष-मोहादि हैं ही नहीं। **अरे! ऐसे आनन्द से भरपूर अन्तर्तत्त्व को छोड़कर कौन बाह्य विषय-कषायों**

की ओर देखेगा ? सुख के समुद्र से बाहर निकलकर कौन दुःख में जाएगा ?

अखण्डस्वरूप के आश्रय से प्रगट हुई परिणति भी अखण्ड है। जो पर्याय, अखण्ड आत्मस्वरूप में एकाग्र हुई, वह पर्याय भी अखण्ड है। वह रागादि विकार द्वारा खण्डित नहीं है; उसमें रागादि का अभाव है और अखण्ड तत्त्व के आनन्द का सद्भाव है, वह अजोड़दशा है; उसके साथ व्यवहार के भावों की तुलना नहीं हो सकती। उस पर्याय में तो आनन्दमय प्रभु भगवान आत्मा पधारे हैं।

कारणपरमात्मारूप शुद्धद्रव्य, अपनी अन्तर्मुखपरिणति में रुक गया है; इसलिए वह आगे निकलकर बाह्य परभावों में नहीं जाता। अहा! अपनी चैतन्यपरिणति में अपना परमात्मतत्त्व विराजमान है; अपनी परिणति के साथ द्रव्य जुड़ा है और परिणति अपने द्रव्य में जुड़ी है — इस प्रकार द्रव्य-पर्याय का अद्वैतपना है; उनमें द्वैत नहीं है, उसमें कहीं रागादि परभाव नहीं है।

अरे! यदि चेतनारूप परिणति में चैतन्य प्रभु नहीं आवे तो उसे चेतन-परिणति कौन कहेगा ? जिस प्रकार सिद्ध भगवान, राग में नहीं रहते, अपने स्वभाव में ही रहते हैं; उसी प्रकार साधक की अन्तर्मुखपरिणति भी, रागादि परभावों में नहीं वर्तती; वह तो परमतत्त्व के आनन्द से भरपूर है — आत्मा का ऐसी परिणतिरूप परिणमित होना ही सच्ची दीपावली है। उसी दीपावली में अनन्त चैतन्य दीपक प्रगट हुए हैं और आनन्दमय सुप्रभात का उदय हुआ है।

अरे! जिस जीव को संसार के प्रपञ्च और लक्ष्मी इत्यादि

वैभव में सुख भासित होता है, वह जीव वहाँ से उपयोग हटाकर, अभ्यन्तर आनन्दमय तत्त्व के साथ अपने उपयोग को कैसे जोड़ेगा ? और उसे मुक्ति-सुख भी कैसे उपलब्ध होगा ?

अहा! आत्मा स्वयं शान्तरस का महासागर, परमानन्द से भरपूर तत्त्व है; उसमें उपयोग जोड़ने से प्रगट होनेवाली आनन्ददशा अजोड़ है; उसके समक्ष संसार के समस्त सुख तो प्रपञ्चरूप है, उनमें कहीं सच्चा सुख है ही नहीं। सच्चा सुख तो अन्तर के सुख -निधान में से ही प्रगट होता है।

जिसने अपने उपयोग को अन्तर के सुख-निधान में जोड़ा है — ऐसे सम्यग्दृष्टि योगीजन ही निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द का अनुभव करते हैं। उस आनन्द का अनुभव प्रगट होना ही चैतन्य दीपक से जगमगाती दीपावली है।

अहा! बाह्यदृष्टिवन्त जीवों को ऐसा अपूर्व चैतन्यसुख कैसे हो सकता है ? वस्तुतः जो उपयोग को राग से पृथक् करके, अन्तर में जोड़ता है, उसे ही इस अपूर्व चैतन्यसुख का अनुभव होता है। ऐसी दशा ही भव-अन्त का पन्थ है, यही महा आनन्द का मार्ग है। आत्मा में ऐसी दशा द्वारा ही आनन्दमय **सच्ची दीपावली** मनायी जाती है।

चैतन्य की परिणति का अपने कारणपरमात्मा के साथ ही मेल खाता है, इसके अतिरिक्त दुनिया के प्रपञ्च के साथ उसका मेल खाता ही नहीं; इसलिए कदाचित् दुनिया के कोई अज्ञानी जीव तेरे सत्यमार्ग की निन्दा करे तो भी तू सत्यमार्ग के प्रति परमभक्ति अथवा उत्साह का त्याग मत करना।

अहा...! यही मेरे सुख का मार्ग है — इस प्रकार परम निःशङ्करूप से अन्तर में अपने मार्ग में चले जाना। अन्तर का मार्ग, बाह्य शुभाशुभरागरूप प्रपञ्च में अटके हुए जीवों को प्राप्त नहीं होता। दुनिया, दुनिया में रहो; मेरा मार्ग तो मुझमें समाहित है। चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा आत्मा, मुक्ति प्राप्त करता है। आत्मा महाशुद्ध रत्नत्रयस्वभावी है, उसमें अपने को सम्यक् परिणाम द्वारा स्थापित करना ही मुक्ति की कारणरूप निश्चयभक्ति है।

अरे! आत्मा की शान्ति से बाहर निकलकर, चौरासी के चक्कर में दुःखी होकर दौड़ रहे इस आत्मा को, उससे बाहर निकालने के लिए, अर्थात् दुःख की प्रज्ज्वलित अग्नि में से आत्मा को बचाने के लिए, हे जीव! अन्दर महान शान्ति का सरोवर है, उसमें निज आत्मा को सराबोर कर!

स्व-स्वभाव के सन्मुख होकर, निज आत्मा को सम्यक् परिणाम में स्थापित करना ही चैतन्य की मुक्ति-प्रदायिनी परमभक्ति है।

वाह...! मुक्ति का मार्ग... उसकी भी कोई परम अचिन्त्य महिमा है...! तथा जिस आत्मस्वभाव में से वह मार्ग प्रगट होता है, उसकी महिमा की तो क्या बात...! उस स्वभाव को लक्ष्यगत करने से उसकी परम महिमारूप भक्ति जागृत होती है और परिणाम उसमें एकाग्र होकर, उसे ही भजते हैं; उस भक्ति द्वारा जीव, परम आनन्दमय मोक्षपद को प्राप्त करता है।

आत्मा का चैतन्यघर महान आनन्द से अत्यन्त शोभित है। जगत में इससे उत्कृष्ट कोई वस्तु नहीं है। अरे जीव! निजघर में आकर, अपने आत्मा की शोभा तो देख! उसमें अद्‌भुत-अलौकिक

आनन्द भरा है... उसमें चैतन्य भगवान निवास करता है... भगवानपना तेरे घर में ही भरा है, उसमें किसी विकल्प का कचरा नहीं है, कोई विपदा नहीं है। इस चैतन्य-चमत्कारमय, आनन्दमय स्वघर में तेरा आत्मा अतिशय आनन्द से सुशोभित हो जाएगा.... **आत्मा में दीपावली के चैतन्य दीपक जगमगा उठेंगे।** ●●

(आत्मधर्म गुजराती, वर्ष 29, अक्टूबर 1974 से अनुवादित)

मोक्षार्थी का परम कर्तव्य

आत्मा स्वयं परम आनन्द का धाम है। उसमें जो परिणति ढली है, वह परिणति उपशम आदि शुद्धभावरूप हुई है और रागादि उदयभावों का उसमें अभाव है। राग के अवलम्बन से तो आत्मध्यान होता नहीं परन्तु जो उपशम आदि पर्यायें, उन पर्यायों के अवलम्बन से भी आत्मध्यान नहीं होता। आत्मा के अखण्ड स्वभाव के अवलम्बन से वे उपशमादि निर्मलभाव प्रगट हो जाते हैं। क्षायिक श्रद्धा प्रगट हुई, उस पर्याय के अवलम्बन से दूसरी क्षायिक पर्याय प्रगट नहीं होती। उस-उस काल में अन्तर के शुद्धस्वभावरूप परम तत्त्व के अवलम्बन से ही क्षायिकभाव सदा हुआ करता है। उसमें राग के या पर के अवलम्बन की तो बात ही नहीं है। इसलिए मोक्षार्थी जीव को अन्तर्मुख होकर अपने एक सर्वोपरि परम तत्त्व का ही अवलम्बन लेना चाहिए, अर्थात् उसी का ध्यान करना चाहिए। उस ध्यान में भगवान का साक्षात्कार होता है और उसमें सब समाहित हो जाता है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

भगवान महावीर का जीवन-दर्शन

आज वीर भगवान के निर्वाणकल्याणक का माङ्गलिक दिवस है। आज से चौबीस सौ सत्तर वर्ष पूर्व (वर्तमान में 2532 वर्ष पूर्व) इस भरतक्षेत्र में भगवान महावीर विराजमान थे। उन भगवान महावीर का जन्मकल्याणक चैत्र शुक्ल तेरस को हुआ था, उसके बहत्तर वर्ष बाद वे निर्वाण को प्राप्त हुए। आज उस निर्वाणकल्याणक का दिवस है।

महावीर भगवान भी, जैसे हम सब आत्मा हैं, वैसे आत्मा थे। वे भी पहले चार गतियों में भ्रमण कर रहे थे। उसमें से वे उन्नतिक्रम में चढ़ते-चढ़ते तीर्थङ्कर हुए। भगवान चार गति में थे, उन्हें सत्समागम से आत्मा का भान हुआ। जैसे चौंसठ पहरी पीपल को घिसते-घिसते वह चरपरी होती जाती है; उसी प्रकार आत्मा में परमानन्द भरा है, वह प्रयास द्वारा बाहर आता है। इसी प्रकार महावीर भगवान की आत्मा में परमानन्द भरा था, वह स्वयं अनुक्रम से प्रगट हुआ। मैं तो मन, वाणी, देह से पृथक् आनन्दमूर्ति तत्त्व हूँ, मेरा स्वभाव चेतना है। चेतना, अर्थात् जानना और देखना। उसमें जितने संयोगीभाव होते हैं, वे सब पर की अपेक्षा होते हैं। जब तक चैतन्य के शुद्धस्वभाव की दृष्टि नहीं होती, तब तक अन्दर से विकसित होकर स्वतन्त्रता प्रगट नहीं होती, अर्थात् मोक्षदशा प्रगट नहीं होती।

एक हजार काँच के टुकड़ों के बीच हीरा पड़ा हो तो वह हीरा संयोग में पड़ा हुआ है। जिसे उस हीरे की कीमत लगती है, वह संयोग में पड़े हुए उस हीरे की परीक्षा करके, हीरे को काँच से भिन्न कर लेता है। इसी प्रकार कर्म के संयोग के बीच अनादि से चैतन्यमूर्ति ज्ञानज्योति निराला हीरा / भगवान आत्मा पड़ा है। जिसे ऐसे चैतन्यस्वरूप को प्राप्त करना है, वह सत्समागम से चैतन्यमूर्ति आत्मा की पहचान करके, श्रद्धा करके, उसमें स्थित होकर मोक्षदशा प्रगट करता है। इस प्रकार चैतन्यमूर्ति हीरे को श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र द्वारा जुदा कर लेता है।

तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध

महावीर भगवान इस अन्तिम भव से पूर्व दशवें महाशुक्र स्वर्ग में थे और तत्पूर्व नन्दराजा के भव में उन्होंने आत्मा के भानसहित चारित्र का पालन किया था, नग्न दिगम्बर मुनि हुए थे। उस मुनिपने में स्वरूप की रमणता में रमते थे। अहा! उस भव में उन्होंने तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध किया था। एक पुण्य का रजकण अथवा एक शुभभाव का अंश उत्पन्न हो — ऐसा मेरा स्वरूप नहीं, वह मेरा कर्त्तव्य नहीं है — ऐसे भानपूर्वक वे स्वरूप में रमते थे।

उस दशा की भूमिका में उन्हें शुभविकल्प आता है कि अरे रे! जीवों को इस स्वरूप का भान नहीं है। स्वरूप-रमणता में से बाहर आने पर उन्हें ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ कि अहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव! उसे सभी जीव कैसे प्राप्त करें? सभी जीव ऐसा स्वभाव प्राप्त कर लें, ऐसा विकल्प आया, परन्तु वास्तविकरूप से तो उसका अर्थ यह है कि अहा! ऐसा मेरा चैतन्यस्वभाव पूरा कब

हो ? मैं पूरा कब होऊँ — ऐसी भावना का जोर है और बाहर से ऐसा विकल्प आता है कि अहा ! ऐसा स्वभाव सभी जीव कैसे प्राप्त करें ? उस उत्कृष्ट शुभभाव से तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध होता है।

जिस भाव से तीर्थङ्करप्रकृति बँधती है, वह भाव भी आत्मा को लाभ नहीं करता। वह शुभराग टूटेगा, तब भविष्य में केवलज्ञान होगा। उस तीर्थङ्कर पद में जो वाणी छूटेगी, उस वाणी के रजकण, स्वरूप के भान की भूमिका में बँधते हैं। यह राग मेरा कर्त्तव्य नहीं है — ऐसा उन्हें थान था और स्वरूप-रमणता थी, उस भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति बँध गयी।

राग को लाभरूप माननेवाली भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता, परन्तु राग मुझे लाभरूप नहीं है, मैं राग का कर्ता नहीं हूँ — ऐसे भानवाली भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध होता है।

महावीर भगवान ने नन्दराजा के भव में ऐसी वाणी का बन्धन किया कि भविष्य में पात्र जीवों को लाभ दें, अर्थात् भव-पार होने का निमित्त बनें। अन्य जीवों को तिरने का सर्वोत्कृष्ट निमित्त बनें — ऐसी तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध किया और जब तीर्थङ्करदेव के भव में दिव्यध्वनि छूटती है, तब अनेक जीवों को तिरने में वह वाणी निमित्त होती है।

गर्भ से छह माह पूर्व एवं गर्भ में सवा नौ माह

भगवान महावीर के जीव ने नन्दराजा के भव में चारित्र का पालन किया और तत्पश्चात् अनुक्रम से आयु पूर्ण करके वहाँ से दशवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहाँ दशवें स्वर्ग में जब देवरूप से भगवान की आयु छह माह शेष रहती है, तब वहाँ अन्य देवों को

भी पता लग जाता है कि यह जीव छह माह पश्चात् भरतक्षेत्र में महारानी त्रिशला के गर्भ से चौबीसवें तीर्थङ्कर के रूप में जन्म लेगा। इसलिए वे देव, छह माह पूर्व से ही माता के समीप आकर माता की सेवा करते हैं।

वे देव, माता के समीप आकर कहते हैं कि हे रत्नकूखधारिणी माता! आप धन्य हैं!! आपके गर्भ में छह महीने पश्चात् जगत के तारणहार, बहुत जीवों का उद्धार करनेवाले त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्कर आनेवाले हैं। छह माह पहले देव, माता-पिता के घर रत्नवृष्टि करते हैं। यहाँ उन रत्नों की कीमत नहीं है, क्योंकि रत्न तो धूल हैं।

जहाँ अनाज पकता है तो उसके साथ घास तो होता ही है। यद्यपि उस घास की कीमत नहीं है, अनाज की ही कीमत है। किसान भी घास के लिए खेत नहीं बोता, अनाज के लिए बोता है। इसी प्रकार जहाँ मोक्षमार्गरूप अनाज पकता है, वहाँ उसके साथ शुभपरिणाम से तीर्थङ्कर पद, चक्रवर्ती पद इत्यादि घास तो सहज पकती है। घास की इच्छा से घास नहीं पकती, अपितु सहज पकती है।

जिसे पूर्ण परमानन्द प्रगट हो गया है — ऐसे परमात्मा पुनः अवतार नहीं लेते, परन्तु जगत् के जीवों में से एक जीव उन्नति क्रम में बढ़ते-बढ़ते जगत गुरु तीर्थङ्कर होता है। जब जगत के जीवों की ऐसी उत्कृष्ट योग्यता तैयार होती है, तब ऐसा उत्कृष्ट निमित्त भी तैयार होता है।

महाराजा सिद्धार्थ के घर महारानी त्रिशला के गर्भ से जन्म

भगवान महावीर गर्भ में आने के पश्चात् अनुक्रम से सवा नौ महीने में उनका जन्म होता है। सौधर्म इन्द्रादि देव आकर भगवान

का जन्म-महोत्सव मनाते हैं। सौधर्म इन्द्र के साथ उनकी शची इन्द्राणी भी आती है और माता के पास जाकर कहती है कि हे रत्नकूखधारी माता! तीन लोक के नाथ को जन्म देनेवाली जनेता!! तुम्हें धन्य है! ऐसा कहकर भगवान को लेकर सौधर्म इन्द्र को देती है। सौधर्म इन्द्र भी भगवान को एक हजार नेत्र बनाकर निरखता है। भगवान को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक कराता है। इस प्रकार इन्द्र, परमभक्तिपूर्वक भगवान का जन्मकल्याणक महोत्सव करता है। इसका वर्णन शास्त्रों में बहुत आता है।

तीस वर्ष की उम्र में दीक्षा

जन्म होने के पश्चात् भगवान महावीर तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे, तत्पश्चात् स्वयं दीक्षित हुए। देव आकर दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। प्रभु स्वयं दीक्षित होकर बारह वर्ष की स्वरूप -रमणता करते हुए विचरते हैं। इच्छा निरोधरूप स्वरूप-रमणता में उनका काल व्यतीत होता है।

बयालीस वर्ष की उम्र में केवलज्ञान

तत्पश्चात् वैशाख शुक्ल दशम के दिन श्री महावीर भगवान को केवलज्ञान होता है। वे केवलज्ञान में तीन काल, तीन लोक को स्पष्ट जानते हैं। स्व-परपदार्थों के अनन्त भाव केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं। तीर्थङ्करदेव को केवलज्ञान होने पर तुरन्त ही दिव्यध्वनि खिरती है; अन्य सामान्य केवली के लिए यह नियम नहीं है परन्तु तीर्थङ्कर भगवान के तो नियमरूप से दिव्यध्वनि छूटती है।

छयासठ दिन तक दिव्यध्वनि का विरह

भगवान महावीर को केवलज्ञान हुआ, समवसरण की रचना

हुई, बारह सभाएँ भर गयीं, तथापि दिव्यध्वनि नहीं छूटी। इन्द्र को विचार आया कि भगवान की दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरती। इन्द्र ने अवधिज्ञान का उपयोग करके देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि सभा में उत्कृष्ट पात्र जीव, अर्थात् गणधर नहीं हैं। इस सभा के पात्र होने योग्य गौतम हैं — ऐसा ज्ञात होने पर इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप बनाया और गौतम के पास गये।

गौतम चार वेद में प्रवीण थे, उन्हें चर्चा का बहुत शौक था, इसलिए श्री गौतमस्वामी, भगवान महावीर के पास आने के लिए तैयार हुए। ज्यों ही गौतमस्वामी मानस्तम्भ के समीप आये, उनका मान गल गया। वीरप्रभु के दर्शन करके उन्होंने धर्म प्राप्त किया और मुनिपना अङ्गीकार कर लिया। भगवान की वाणी झेल सकें — ऐसे उत्कृष्ट पात्र गौतमस्वामी के आने से भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी। गौतमस्वामी चार ज्ञान के धारी और गणधर हो गये।

भगवान महावीर को केवलज्ञान होने के पश्चात् छयासठ दिन के बाद दिव्यध्वनि खिरी, अर्थात् श्रावण कृष्ण एकम् के दिन भगवान की दिव्यध्वनि खिरी; इसीलिए श्रावण कृष्ण एकम् वीर-शासन-जयन्ती का दिन कहलाता है, अर्थात् शास्त्र प्ररूपणा का दिन कहलाता है। केवलज्ञान में अनन्त भाव ज्ञात होते हैं, इसलिए उनकी दिव्यध्वनि में भी अनन्त रहस्य आते हैं। ज्ञान में भाव पूरा है, इसलिए वाणी में भी पूरा आता है।

केवलज्ञान होने के पश्चात् किसी तीर्थङ्कर की आयु दीर्घ होती है और किसी की अल्प। भगवान महावीर की आये बहत्तर वर्ष थी। अभी महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान चैतन्यमूर्ति परमात्मा

समवसरण में इन्द्रों और गणधर आदि की बारह सभा में विराजमान हैं। उनकी आयु 84 लाख पूर्व की है, जीवन्मुक्तरूप से तेरहवें गुणस्थान में श्री सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में विराज रहे हैं, उनकी आयु लम्बी है।

श्री भगवान महावीर परमात्मा ने केवलज्ञान प्रगट किया, इसलिए चार घातिकर्मों का नाश हुआ। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अनतराय — इन चार घातिकर्मों का नाश हुआ। इस प्रकार उन्होंने केवलज्ञानरूप से जीवन्मुक्तदशा में तेरहवें गुणस्थान में तीस वर्ष तक विचरण किया। तत्पश्चात् चार अघातिकर्म, अर्थात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र — ये चार कर्म पावापुरी के बाहर उद्यान में नाश किये।

बहत्तर वर्ष की उम्र में मोक्ष

पावापुरी के बाहर उद्यान में भगवान आज निर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान को केवलज्ञान तो तीस वर्ष पहले हो गया था और निर्वाण आज दीपावली के दिन हुआ। इस प्रकार जीवन्मुक्त भगवान, देहमुक्त हुए और चैतन्य का ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से सिद्धक्षेत्र में जा विराजे। यद्यपि आनन्ददशा / पूर्णानन्द / मुक्तदशा तो यहीं प्रगट हुई थी, परन्तु प्रदेशों का कम्पन मिट जाने से अकम्प होकर देह छूट जाने पर भगवान महावीर आज देहमुक्त हुए हैं।

पावापुरी का जो क्षेत्र है, वहाँ से समश्रेणी में ऊपर सिद्धक्षेत्र में भगवान महावीर परमात्मा विराजमान हैं। आत्मा, देह से अत्यन्त छूट गया, इसका नाम मुक्ति है। अपना ज्ञान-आनन्दमूर्ति स्वभाव रह जाना और सब छूट जाना, इसका नाम मुक्ति है। भगवान,

कार्मणशरीर से छूटकर मोक्ष पधारे। आज भगवान महावीर का विरह होने से भक्तों को प्रशस्तराग के कारण अश्रुधारा बहने लगी और वे कहते हैं कि 'अरे! भरत का सूर्य अस्त हो गया, परन्तु भगवान महावीर का आत्मा मुक्त हुआ; इसलिए उनका निर्वाणकल्याणक महोत्सव भी मनाते हैं।'

दीपावली के दिन का महत्त्व

भगवान मोक्ष पधारे, तब पावापुरी में इन्द्र और देवों ने आकर महोत्सव किया। पावापुरी में दीपक इत्यादि से माङ्गलिक महोत्सव किया गया, इसलिए आज के दिन को दीपोत्सव या दीपावली कहते हैं।

आजकाल लोग बहीखाता इत्यादि की पूजन करके संसार के लिए दीपावली मनाते हैं, परन्तु वस्तुतः तो आज का दिन आत्मा के पूर्णानन्द स्वभाव को प्रगट करने की भावना का है। जैसा भगवान का आत्मा है, वैसा ही मेरा आत्मा है। ऐसा विचार कर स्वभाव का भान करके विभावपरिणाम को स्वरूप-स्थिरता के द्वारा तोड़ने का पुरुषार्थ प्रगट करने के लिए आज का दिन है।

जगत के जीव मरते हैं, तब शोक होता है और भगवान की मुक्ति का महोत्सव होता है क्योंकि वह मरण नहीं, अपितु जीवन है; सहजानन्दस्वरूप में विराजमान रहनेवाला आत्मा का जीवन है; इसलिए उसके महोत्सव होते हैं। पूर्णानन्द या सहजानन्द में रहना, इसी का नाम मुक्ति है।

श्री महावीर परमात्मा ने वाणी द्वारा जो वस्तुस्वरूप बताया, उसे गणधरों ने झेला और वह वाणी आचार्य-परम्परा से अभी तक

चली आ रही है। इस भरतक्षेत्र में परम गुरुदेव कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र की स्थापना करके, श्रुत की प्रतिष्ठा करके अपूर्व उपकार किया है। लोगों को वह यथातथ्य बात समझना कठिन पड़ती है। श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह समयसार शास्त्र तो सर्वोत्कृष्ट योगपूर्वक (वचनयोग से) समझाया है, इस शास्त्र में केवलज्ञान भरा है।

आज के दिन की हमारे लिए सार्थकता

लोग कहेंगे कि ये तो 'छोटा मुँह बड़ी बात' है, परन्तु भाई! चाहे बालक अग्नि को स्पर्श करे या बड़ा अग्नि को स्पर्श करे, परन्तु उन दोनों को उष्णता के अनुभव में कोई अन्तर नहीं है। अग्नि का स्वभाव, छह माह के बालक ने जो जाना, वही स्वभाव पण्डित, वकील और वैज्ञानिकों ने जाना है। दोनों ये जानते हैं कि अग्नि को स्पर्श करने से ताप लगता है, उस अग्नि की उष्णता के सम्बन्ध में दोनों के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है।

जिस प्रकार बालक भी उष्णता लगने से पुनः अग्नि को स्पर्श करने नहीं जाता; इसी प्रकार बड़े भी अग्नि को स्पर्श करने नहीं जाते। बड़े विशेष कथन करते हैं कि अग्नि प्रकाशवाली है, अग्नि उष्ण है आदि और बालक विशेष कथन नहीं कर सकता। इस प्रकार कथन में अन्तर भले ही पड़ता है परन्तु बालक के अनुभव में और बड़े के अनुभव में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इसी प्रकार त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्करदेव तीन लोक-तीन काल के विज्ञान के पण्डित हैं। उन्होंने जैसा वस्तु का स्वरूप जाना है, वैसा ही अविरति बालक भी जानता है। वस्तु का स्वरूप जैसा केवलज्ञानी ने जाना है, वैसा ही अविरति बालक ने भी जाना है। केवली और

चौथे गुणस्थान की प्रतीति में कोई अन्तर नहीं है। जैसी स्वभाव की प्रतीति केवलज्ञानी को है, वैसी ही प्रतीति चौथे गुणस्थानवाले, गृहस्थाश्रम में राज्य करनेवाले अथवा युद्ध में खड़े अविरत समकिती की भी होती है। स्वभाव की प्रतीति में दोनों में अन्तर नहीं है।

एक भी राग का अंश मेरा स्वरूप नहीं है — ऐसी प्रतीति चौथे गुणस्थानवाले समकिती को होने पर भी, वह दया, दान, पूजा, भक्ति इत्यादि में जुड़ता अवश्य है और शुभभाव में जुड़ने पर भी उस अविरति समकिती, केवलज्ञानी और सिद्ध की स्वभाव की प्रतीति एक समान ही है, उस प्रतीति में किञ्चित् भी अन्तर नहीं है, परन्तु ज्ञान और चारित्र में अन्तर है।

निचली दशावाला वीतराग नहीं है, इसलिए उसे राग आता है क्योंकि राग तो निचली भूमिका में ही होता है न! वीतराग को राग कहाँ आता है? चौथे गुणस्थान में पुण्य-पापभाव होते अवश्य हैं, परन्तु वे समझते हैं कि यद्यपि मेरे पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण ये भाव हुए हैं, तथापि ये मेरा स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव नहीं माना, इसलिए उन शुभभावों को अपना कर्त्तव्य नहीं माना; अपने स्वरूप में स्थिर हो जाना ही उसने अपना कर्त्तव्य तो माना है; इसलिए उसका पुरुषार्थ भी उसी जाति का होता है और जब-जब वह अविरत सम्यग्दृष्टि, स्वरूप में स्थिर होता है, तब वह सिद्ध जैसा आंशिक अनुभव करता है।

पञ्चम काल के अन्त तक धर्म की अविरलधारा

भगवान महावीर समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा कह गये हैं कि पञ्चम काल के अन्त तक एकावतारी जीव होनेवाले हैं।

केवलज्ञानी परमात्मा को जैसी स्वभाव की प्रकृति है, वैसी ही प्रकृति चौथे गुणस्थानवाले को होती है। जैसा एकावतारीपना पञ्चम काल के प्रारम्भ में चौदह पूर्व के धारी मुनियों को था, वैसा ही एकावतारीपना पञ्चम काल के अन्त तक के जीवों को भी होगा। वे जीव भी आत्मा का भान करके, स्थिरता के जोर की भावना से एक भव में मुक्ति लेंगे।

इस प्रकार दोनों के मुक्ति के फल में कुछ अन्तर नहीं है। शुरुआत और अन्तिम दोनों समान हो गये। ज्ञान की न्यूनाधिकता है, तथापि मुक्ति के फल में कोई अन्तर नहीं है। श्रद्धा और मुक्ति के फल, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। इक्कीस हजार वर्ष तक लाखों -करोड़ों जीवों में कोई-कोई जीव आत्मभान करके इस शासन में एकावतारी हुआ करेंगे — ऐसा भगवान महावीर कह गये हैं।

समकिती और केवलज्ञानी, दोनों श्रद्धा अपेक्षा से समान हैं। प्रभु के पश्चात् हुए सन्त-मुनि तथा पञ्चम काल के अन्त तक के समकिती जीव भी एकावतारीपना पावें, उस मुक्ति के फल में दोनों समान हैं। भगवान महावीर आज मोक्ष पधारे, तब से भगवान की वाणी परम्परा से अविरल चली आ रही है।

एक-एक मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका पञ्चम काल के अन्त में भी आत्मा का भान करके, एकावतारीपना प्राप्त करेंगे, तो फिर अभी क्यों नहीं हो सकता? छोटी-सी बालिका भी आत्मभान कर सकती है। सबका आत्मा तीन लोक का नाथ है, इसमें कोई अन्तर नहीं है। शरीर में अन्तर है, परन्तु वह बालिका भी पर से भिन्न आत्मस्वरूप की श्रद्धा कर सकती है। पञ्चम काल के

अन्त तक आत्मभान कर सकती है तो अभी तो अवश्य किया जा सकता है।

अभी आत्मभान तो किया जा सकता है, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि स्वयं ने पूर्व में उलटा पुरुषार्थ किया है, अब उसे सुलटा करने में अनन्त पुरुषार्थ चाहिए, और उतना पुरुषार्थ स्वयं नहीं कर सकता; इसलिए अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हो सकती। इसमें स्वयं के पुरुषार्थ की कमजोरी ही कारण है।

यह जो भगवान महावीर की बात कही जा रही है, वैसे स्वरूप को जो प्रगट करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। जैसा भगवान महावीर के आत्मा का स्वरूप है, वैसा ही समस्त आत्माओं का स्वरूप है। आज भगवान महावीर के गीत गाये, वे अपने स्वरूप को प्रगट करने के लिए हैं। वैसे स्वरूप को समझे तो अभी भी एकावतारीपना प्रगट किया जा सकता है। ●●

[आत्मधर्म (गुजराती) कार्तिक, वी.नि.सं. 2470, अक्टूबर 1944, वर्ष 7, अङ्क 73, पृष्ठ 10-14]

महान तत्त्व

- ✯ प्रभु! तू महान तत्त्व है; राग जितना छोटा तू नहीं है।
- ✯ तुझमें से तो अलौकिक आनन्द की तरंगें उठें, ऐसा तू है।
- ✯ तुझमें से राग की या दु:ख की तरंगें उठें, ऐसा तू नहीं है।
- ✯ अन्तर्मुख होने से स्वतत्त्व, ज्ञान-आनन्द की तरंगरूप परिणमित होता है।
- ✯ ऐसे आनन्दमय तत्त्व का माप विकल्पों से नहीं हो सकता; उसका माप तो चैतन्य द्वारा ही होता है — ऐसा महान आत्मतत्त्व है।

(- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

निर्वाण प्राप्ति का ध्रुव मार्ग

आज भगवान महावीर परमात्मा ने पावापुरी से मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का आत्मा आज पूर्ण निर्मलपर्यायरूप से परिणमित हुआ और भगवान, सिद्धपद को प्राप्त हुए। पावापुरी में इन्द्रों तथा राजा-महाराजाओं ने निर्वाण-महोत्सव मनाया था, उसी दीपावली तथा नूतनवर्ष का आज दिवस है। भगवान, पावापुरी से स्वभाव ऊर्ध्वगमन करके ऊपर सिद्धालय में विराज रहे हैं। अनादि काल में कभी नहीं हुई थी - ऐसी दशा आज भगवान को पावापुरी में प्रगट हुई, इसलिए पावापुरी भी तीर्थधाम है। हम सम्मेदशिखर की यात्रा के समय पावापुरी की यात्रा करने गये, तब वहाँ भगवान का अभिषेक किया था; वहाँ सरोवर के बीच में - जहाँ से भगवान मोक्ष पधारे थे - भगवान के चरण कमल हैं। तीर्थङ्करों का द्रव्य त्रिकाल मङ्गलरूप है तथा जो जीव, केवलज्ञान प्राप्त करनेवाला है, उसका द्रव्य भी त्रिकाल मङ्गलरूप है।

भगवान का आत्मा त्रिकाल मङ्गलस्वरूप है। उनका द्रव्य तो त्रिकाल मङ्गलरूप है ही, वे जहाँ से मोक्ष को प्राप्त हुए, वह क्षेत्र भी मङ्गल है; आज मोक्ष प्राप्त किया, इसलिए आज का काल भी मङ्गलरूप है और भगवान के केवलज्ञानादिरूप भाव भी मङ्गलरूप हैं; इस प्रकार भगवान महावीर परमात्मा, द्रव्य-क्षेत्र-काल और

भाव से मङ्गलरूप हैं। भगवान के मोक्ष प्राप्त करने पर यहाँ भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर का विरह हुआ। भगवान का स्मरण करके भगवान के भक्त कहते हैं कि – हे नाथ! आपने चैतन्यस्वभाव में अन्तर्मुख होकर आत्मा की मुक्तदशा साध ली और दिव्यवाणी द्वारा हमें उसी आत्मा का उपदेश दिया। ऐसे स्मरण द्वारा श्रद्धा-ज्ञान की निर्मलता करे, वह मङ्गलकाल है; जहाँ ऐसी निर्मलदशा प्रगट हो, वह मङ्गल क्षेत्र है; श्रद्धा-ज्ञान का जो भाव है, वह मङ्गल भाव है और आत्मा स्वयं मङ्गलरूप है।

भगवान का मोक्षकल्याणक मनाने के बाद इन्द्र और देव नन्दीश्वरद्वीप में जाकर वहाँ आठ दिन तक उत्सव मनाते हैं।

आज भगवान के निर्वाण का दिवस है और इस 'अष्टप्राभृत' में भी आज निर्वाण की ही गाथा पढ़ी जा रही है। निर्वाण किस प्रकार तथा कैसे पुरुष को होता है? — वह बात शीलप्राभृत की 11-12 वीं गाथा में कहते हैं —

णाणेव दंसणेव य तवेण, चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं, जीवाणं चरित्तसुद्धाणं॥ 11॥
सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं॥ 12॥

उपयोग को अन्तर्मुख करके, धर्मी जीव, चैतन्य के शान्तरस का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार कुएँ की गहराई में से पानी खींचते हैं, उसी प्रकार सम्यक् आत्मस्वभावरूप कारणपरमात्मा को ध्येयरूप से पकड़कर, उसमें गहराई तक उपयोग को उतारने से पूर्ण शुद्धता होती है और इसी रीति से निर्वाण होता है। निर्वाण

कोई बाह्य वस्तु नहीं है, किन्तु आत्मा की पर्याय परमशुद्ध हो गयी तथा विकार से छूट गयी, उसी का नाम निर्वाण है।

भगवान का मनुष्य शरीर था, इसलिए अथवा वज्रऋषभनाराच –संहनन था, इसलिए निर्वाण हुआ – ऐसा नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप से भगवान ने मुक्ति प्राप्त की है। यह भगवान महावीर का शासन चल रहा है। भगवान अपने परम आनन्द में तृप्त हो रहे हैं.... अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। ऐसी निर्वाणदशा का आज मङ्गलदिवस है और यह निर्वाण के उपाय की गाथा भी मङ्गल है। इस प्रकार दीपावली मङ्गलमय है।

जिसने चैतन्य में ही उपयोग लगाकर उसे बाह्य ध्येय से विमुख किया है, अर्थात् विषयों से विरक्त होकर चैतन्य के आनन्द–रस का स्वाद लेता है, आनन्दानुभव को उग्र बनाकर स्वाद में लेता है, ऐसा पुरुष नियमपूर्वक ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त होता है।

देखो, यह निर्वाण का ध्रुवमार्ग! अन्तर्मुख होकर जिसने ऐसा मार्ग प्रगट किया, वह वहाँ से लौटता नहीं है.... ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त करता है। जो जीव, दर्शनशुद्धिपूर्वक दृढ़ चारित्र द्वारा चैतन्य में एकाग्र होता है, उसे बाह्य विषयों से विरक्ति हो जाती है, उसी का नाम शील है और ऐसा शीलवान जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। चैतन्यध्येय से च्युत होकर जिसने पर को ध्येय बनाया है, उस जीव के शील की रक्षा नहीं है, उसके दर्शनशुद्धि नहीं है, उसके उपयोग में राग के एकतारूपी विषयों का ही सेवन है। जिसने चैतन्यस्वभाव की रुचि प्रगट की है और राग की रुचि छोड़ी है, उसे चैतन्यध्येय से बाह्य विषयों का ध्येय छूट जाता है –

ऐसा शील, निर्वाणमार्ग में प्रधान है। इस प्रकार से दो गाथाओं में तो दर्शनशुद्धि के उपरान्त चारित्र की बात कहकर साक्षात् निर्वाण मार्ग का कथन किया।

अब, एक दूसरी बात कहते हैं – किन्हीं ज्ञानी धर्मात्मा को कदाचित् विषयों से विरक्ति न हुई हो, अर्थात् चारित्रदशा की स्थिरता प्रगट न हुई हो, किन्तु श्रद्धा बराबर है, तथा मार्ग तो विषयों की विरक्तिरूप ही है – इस प्रकार यथार्थ प्रतिप्रादन करते हैं तो उन ज्ञानी को मार्ग की प्राप्ति कही जाती है। सम्यक्मार्ग का स्वयं को भान है और उसी का भलीभाँति प्रतिपादन करते हैं, किन्तु अभी विषयों से विरक्तिरूप मुनिदशा आदि नहीं है – अस्थिरता है तो भी वे ज्ञानी धर्मात्मा, मोक्षमार्ग के साधक हैं, वे मङ्गलरूप हैं; उन्हें इष्टमार्ग की प्राप्ति है और यथार्थ मार्ग दर्शानेवाले हैं, इसलिए उनके द्वारा दूसरों को भी सम्यक्मार्ग की प्राप्ति होती है, किन्तु जो जीव, विषयों से – राग से लाभ मनाता है, उसे तो सम्यक्मार्ग की श्रद्धा ही नहीं है, वह तो उन्मार्ग पर है तथा उन्मार्ग का बतलानेवाला है। धर्मात्मा को राग होता है, किन्तु उसे वे बन्ध का ही कारण जानते हैं; इसलिए राग होने पर भी उनकी श्रद्धा में विपरीतता नहीं है; उन्हें मार्ग की प्राप्ति है और उनसे दूसरे जीव भी मार्ग प्राप्त कर सकेंगे। **सत्मार्ग को प्राप्त जीव ही सत्मार्ग की प्राप्ति में निमित्तरूप होते हैं।**

अज्ञानी, राग से स्वयं लाभ मानता है और दूसरों को भी मनवाता है; इसलिए वह स्वयं मार्ग से भ्रष्ट है और उसके निकट मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। अहा! चैतन्य के श्रद्धा–ज्ञान तथा उसमें लीनतारूप वीतरागता ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसी वीतरागता

ही मोक्षार्थी का कर्तव्य है; राग किंचित् कर्तव्य नहीं है। राग का एक कण भी मोक्ष को रोकनेवाला है, वह मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है ? – ऐसी ज्ञानी को श्रद्धा है।

ज्ञानी जहाँ पुण्यभाव को भी छोड़ने योग्य मानते हैं, वहाँ वे पाप में स्वच्छन्दतापूर्वक कैसे वर्तेंगे ? चारित्रदशारहित हों तो भी सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में ही हैं, क्योंकि उन्हें वीतराग चारित्र की भावना है और राग की भावना नहीं है। श्रद्धा में वे सारे जगत् से विरक्त हैं, ज्ञान–वैराग्य की अद्‌भुत शक्ति उनको प्रगट हुई है; अन्तर में चैतन्य को ध्येय बनाकर राग से भिन्नता का भान हुआ है – ऐसे भान बिना कोई राग से लाभ माने तथा उसका प्ररूपण करे तो वह उन्मार्ग में हैं, उसके ज्ञान का विकास निरर्थक है; भगवान के मार्ग को उसने नहीं जाना है। भगवान किस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए ? – उसकी उसे खबर नहीं है।

अस्थिरता के कारण सम्यक्त्वी के विषय न छूटें, तथापि उनका ज्ञान नहीं बिगड़ता; दृष्टि के विषय में शुद्ध चैतन्यस्वभाव को पकड़ा है, वह कभी नहीं छूटता; उस ध्येय के आश्रय से वे सम्यक्‌मार्ग में वर्तते हैं; मोक्ष के माणिक स्तम्भ उनके आत्मा में जम गये हैं... वीरप्रभु के मङ्गलमार्ग पर चलकर वे भी मुक्ति को साध रहे हैं।

पूर्णतारूप परिनिर्वाण, मङ्गलरूप है और उसके प्रारम्भरूप सम्यक्त्व भी मङ्गलरूप है।

– इस प्रकार साध्य और साधक दोनों की बात आज दीपावली के माङ्गलिक में आयी है। ●● *[वीर सं० 2488 की दीपावली के अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, 'शील प्राभृत' गाथा 11-12 से (आत्मधर्म, नबम्वर 1962, अंक 7 में से)]*

मोक्ष के लिये योगभक्ति

आज के दिन महावीरस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए थे। मोक्ष की आराधना कैसे हो ? उसकी यह बात है।

भाई ! यह तेरी मुक्ति का मार्ग बताया जा रहा है; तेरे सुख की रीति बतायी जा रही है। आत्मा के शुद्धस्वरूप में उपयोग लगाने से वीतरागी समरस प्रगट होता है, वही मोक्ष की भक्ति है, वह निश्चय योगभक्ति है — ऐसी भक्ति के द्वारा उत्तम पुरुष, मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

आत्मा को कहाँ लगाना ? कैसा अनुभव करना ? उसकी बात है। अज्ञानी अपने आत्मा को राग में लगाकर राग को ही भजता है, उसके बदले राग से भिन्न जो अति अपूर्व निरुपराग चैतन्यपरिणति है, उसमें आत्मा को एकाग्र करना, उसमें मोह-राग-द्वेषादि समस्त परभावों का अभाव है, विकल्प का अभाव है तथा निर्विकल्प समरस के घोलनरूप रत्नत्रयभाव उसमें वर्तते हैं। ऐसी अति -अपूर्व परिणति में आत्मा का परिणमन, वह मोक्ष के लिये योगभक्ति है — ऐसा इस सूत्र में कहा है।

अहो ! कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि सन्त तो वीतरागी भगवन्त थे, उनके द्वारा रचे गये सूत्र भी वीतरागी सूत्र हैं। उसमें कहते हैं कि हे भव्य ! मोक्ष के लिये अपने आत्मा को अपनी अति अपूर्व वीतराग चैतन्यपरिणति में लगा, उसमें आनन्दमय समरस है,

उसमें विकल्प नहीं है, राग नहीं है, दुःख नहीं है — ऐसी निर्विकल्प चैतन्यविलासरूप रत्नत्रय-परिणति में आत्मा को लगाकर, अर्थात् आत्मा को उसरूप परिणमित करके, महावीरप्रभु मोक्ष को प्राप्त हुए हैं; इसलिए हे भव्य जीव! हे महाजनो! तुम भी अपने आत्मा को वीतरागी स्वपरिणति में जोड़कर, परम वीतराग सुख प्रदान करनेवाली ऐसी योग-भक्ति करो।

अहा! आनन्दमय शान्त चैतन्यधाम! उसमें विकल्प का कोलाहल कैसा? शान्ति के समुद्र में अशान्ति कैसी? धर्मी को पर्याय-पर्याय में अपना कारणपरमात्मा अभेद वर्त रहा है। कारणपरमात्मा को स्वयं में अभेद रखकर ही धर्मी का परिणमन वर्त रहा है, अर्थात् उसने स्वयं को राग से पृथक् करके अपनी शुद्ध-निर्विकल्प-आनन्दमय-चैतन्यपरिणति में स्थापित किया है — इसका नाम उत्तम योगभक्ति, तथा यही मोक्षमार्ग! भगवान ऋषभ से लेकर महावीर तक के सभी तीर्थङ्कर भगवन्त ऐसी योगभक्ति के द्वारा निर्वाण को प्राप्त हुए हैं; अतः तुम भी ऐसी उत्तम योगरूप भक्ति करो।

अहा! वे भगवन्त सर्व आत्मप्रदेशों में उत्पन्न आनन्दरूपी परम सुधारस के पान से परितृप्त हुए। सम्यग्दर्शन हुआ, तब भी आत्मा सर्व प्रदेशों में आनन्दमय परम सुधारस के पान से तृप्त-तृप्त हुआ है, और उसके फल में मोक्ष के अनादि-अनन्त आनन्दमय अनन्त चैतन्यरस में आत्मा परितृप्त हुआ है। मोक्ष का मार्ग तो आनन्दमय ही है।

धर्मात्मा जानते हैं कि अहा! मेरा परम आनन्दमय आत्मा जहाँ मेरे अनुभव में विराजमान है, वहाँ अब केवलज्ञान तथा मोक्षदशा

भी मेरे निकट वर्तती है। अब अनन्त काल के भवदु:खों का अन्त आ गया है। सम्यग्दर्शन होते ही रागरहित चैतन्यशान्ति का वेदन हुआ है। शुद्ध द्रव्य-गुण का स्वीकार हुआ, अर्थात् द्रव्य-गुण -पर्याय तीनों से शुद्धरूप आत्मा परिणमित हुआ है; राग के अन्धकार को दूर करके चैतन्य-दीप का प्रकाश प्रगट हुआ है; यही सच्ची दीपावली है। दीपावली में आत्मा ने स्वयं को परम आनन्द की भेंट दी है।

आत्मा का स्वरूप सर्वथा अन्तर्मुख है, उसे अपने में अपनी शुद्ध आनन्दपरिणति का ही साथ है; अन्य किसी का उसे साथ नहीं है, राग तो उससे बाहर रह जाता है।

यह तो सन्तों के मार्ग का अमृत है। थोड़ा भी अमृत परम आनन्द को प्रदान करता है और अनन्त काल के दु:ख को मिटाता है। धर्मात्मा को जहाँ अन्तर्मुखपरिणाम हुए, वहाँ उसकी परिणति में अब निर्मलता ही बहती है। उसकी दशा में कारणपरमात्मा प्रभु विराजमान हैं। अब, राग या भव का उसमें स्थान नहीं है। भाई! तेरे आत्मा को ऐसे स्वभाव की ओर उत्साहित कर! अरे! निजानन्द से भरपूर ऐसे स्व-तत्त्व को भूलकर अन्यत्र कहीं भी उल्लास करके एकाग्र हो जाये, वह अन्तर्मुख कहाँ से होगा? मुक्ति का मार्ग तो सर्वथा अन्तर्मुख ही है।

भाई! मोक्ष के लिये तेरी शुद्धपरिणति ही तुझे अनुकूल है और रागादि प्रतिकूल हैं; अन्य कोई तुझे अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है।

मोक्षमार्ग में तेरी जो अति-अपूर्व शान्तपरिणति है, वही तेरी सहचारी है; उस परिणति में ही तू कारणपरमात्मा विराजमान है। अहा! मैं कारणपरमात्मा जिसमें विराजमान हूँ, उसमें मोह-राग

-द्वेष कैसे रहेंगे ? नहीं रह सकते। अपने आत्मा को शुद्धता में परिणमित किया, वहाँ अब अशुद्धता है ही नहीं — इसी का नाम मोक्ष के लिये सच्ची योगभक्ति है। ऐसी भक्ति के द्वारा ही तीर्थङ्कर भगवान निर्वाण के महा आनन्द को प्राप्त हुए हैं; अतः तू भी आत्मा को ऐसी योगभक्ति में लगा.... तुझे भी महा आनन्दसहित मोक्षमार्ग प्रगट होगा। **आत्मा में मोक्षमार्ग के दीपक प्रज्वलित हुए, वही सच्ची दीपावली है।**

[महावीर निर्वाण मङ्गल दिन, वी. सं. 2498, नियमसार, गाथा 138]

तीर्थङ्करों के पन्थ में....

अरे जीव! तू भवचक्र में दुःख से भटक रहा है; एक बार अपने आनन्दमूर्ति आत्मा को लक्ष्य में लेकर उसका अनुभव कर, तो तेरे समस्त भव मिट जायेंगे और मोक्ष का मार्ग तुझमें ही प्रसिद्ध होगा। अरे! मनुष्यपना प्राप्त करके भी यदि मोक्ष का उपाय नहीं किया तो तूने क्या किया ? इस मनुष्य अवतार में करने योग्य कार्य तो यह एक ही है; दूसरे शुभ-अशुभ हों, वे कहीं चैतन्य की चीज नहीं हैं। ज्ञान को अन्तर्मुख करके सीधे ज्ञानानन्दस्वरूप के साथ सम्बन्ध कर, उसमें तुझे आत्मलब्धिरूप मुक्ति होगी। मोक्ष का महा आनन्द तुझे तेरे आत्मा में ही अनुभव में आयेगा; इसलिए उपयोग को आत्मा में जोड़कर अति-उत्तम / सर्वश्रेष्ठ योग भक्ति कर! समस्त तीर्थङ्कर भगवन्त ऐसी उत्तम योग भक्ति द्वारा ही निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। मैं भी ऐसी योग भक्ति द्वारा मुक्ति के मार्ग में उन तीर्थङ्करों के पन्थ में जाता हूँ।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

देहातीत सिद्धपद की प्राप्ति का उपाय

भगवान महावीर परमात्मा, पावापुरी से देहातीत सिद्धदशा के प्राप्त हुए... ऐसी देहातीत दशा प्राप्त करने से पहले भगवान ने कैसा निर्णय किया था ? वह यहाँ बतलाया है।

मेरा आत्मा देहातीत है, उसका देह के साथ कुछ सम्बन्ध ही नहीं है — ऐसी अन्तरङ्ग पहचान करे, तब ही साधकपना खिलता है, तभी देहातीत दशा को प्राप्त भगवान की वास्तविक पहचान होती है।

आज भगवान महावीर अशरीरी सिद्धदशा को प्राप्त हुए.... पूर्णानन्द सिद्धपद को प्राप्त हुए.... इन्द्रों ने मोक्षकल्याणक मनाया.... 'प्रमोद' — मोद अर्थात् आनन्द; उसकी पूर्णतारूप सिद्धपद-मोक्षपद को आज भगवान ने प्राप्त किया... शरीर का संयोग था, वह भी आज छूट गया, उदयभाव सर्वथा छूट गया और सिद्धपदरूप पूर्ण क्षायिकभाव को प्राप्त हुए, उससे पूर्व साधकदशा में कैसा निर्णय था ? — यह प्रवचनसार गाथा 160 में कहते हैं।

मैं देह नहीं वाणी न मन नहीं और उन कारण नहीं
कर्ता न कारियता नहीं अनुमनता मैं कर्ता का नहीं ॥160॥

आज भगवान, अशरीरी सिद्धपद को प्राप्त हुए; इसलिए आज देह से भिन्न अशरीरी भाव की गाथा पढ़ी जा रही है।

संवत 1978 में जब पहली बार समयसार हाथ में आया और

देखा, तब अन्दर में ऐसा लगा कि यह समयसार अशरीरी भाव बतलाता है। आहा... ! भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने श्री सीमन्धर भगवान के पास से अत्यन्त अशरीरी चैतन्यभाव बतलाया है। उस अशरीरी सिद्धपद के लिये पहले ऐसा निर्णय करना चाहिए।

धर्मी जानता है कि मैं देह से अत्यन्त भिन्न चैतन्यमय हूँ; मेरा चैतन्यस्वभाव इस देह-मन-वाणी का कर्ता नहीं है, करानेवाला नहीं है और अनुमोदक नहीं है। अहो! भगवान आज अशरीरी हुए। वे 2489 वर्ष पूर्व हुए और आज 2490 वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ।* पावापुरी से समश्रेणी में सिद्धपद में भगवान विराजमान हैं। जहाँ से देह छूटे, उसके ठीक ऊपर सीधी श्रेणी से लोकाग्र में भगवान विराजते हैं। सम्मेदशिखर से अनन्त भगवन्त मोक्ष प्राप्त हुए हैं। वे वहीं ऊपर सादि अनन्त काल विराजेंगे, उनके स्मरण के लिये तीर्थस्थान हैं।

अशरीरी पूर्ण ज्ञानघन आत्मा एक समय में स्वाभाविक ऊर्ध्व गति से लोकाग्र में पहुँच कर अनन्त काल तक वहाँ विराजता है। संसार की अपेक्षा सिद्धदशा अनन्तगुनी है, संसारदशा अनन्तवें भाग थी परन्तु उसमें एकस्थान नहीं था; चार गति में भ्रमण था और यह सादि अनन्त परमात्म सिद्धपद प्रगट हुआ... वहाँ उसका स्थान भी अचल हो गया। भाव पूरा हुआ और स्थान अचल हुआ। क्षेत्र से वे चलायमान नहीं तथा काल से भी अब कभी उसका अन्त नहीं। भाव से भी पूरा है। अहो! ऐसा सिद्धपद, शरीर के साथ सर्वथा सम्बन्धरहित-अशरीरी पूर्णानन्द से भरपूर है, उसे आज भगवान ने प्राप्त किया है।

---

* यह प्रवचन आज से लगभग 48 वर्ष पूर्व का है। तदनुसार यह गणना समझना चाहिए।

पहले साधकदशा में भगवान, शरीर-मन-वाणी आदि को भिन्न द्रव्यरूप समझते थे। मैं तो चैतन्यपिण्ड हूँ, और यह शरीर तो पुद्गलपिण्ड है, परद्रव्य है। मैं शरीर, मन, वाणी को परद्रव्य समझता हूँ; इस कारण मुझे उसका पक्षपात नहीं है, मेरा उसमें जरा भी कर्तापना नहीं है; मेरा उसमें जरा भी अधिकार नहीं है। जिसे अपना कर्तव्य माने, उसमें पक्षपात हुए बिना नहीं रहता है परन्तु देहादिक में मेरा कर्तव्य है ही नहीं; इसलिए उसमें मेरा जरा भी हित-अहित नहीं है; अतः मैं उसके प्रति अत्यन्त मध्यस्थ हूँ, अत्यन्त अकर्ता हूँ। वचन निकलते हैं, शरीर चलता है, उसका आधार मैं नहीं हूँ; उस अचेतन का आधार अचेतन है - ऐसे भिन्न चैतन्य के भानपूर्वक भगवान ने मोक्षदशा को साधा है — ऐसा निर्णय करनेवाले को भगवान की पहचान होती है। ऐसा निर्णय करना ही मूल मङ्गल महोत्सव है।

देखो, यह अशरीरी-सिद्धपद का महोत्सव! यह वास्तविक दीपावली!!

अशरीरी होना हो, कलेवर से रहित होना हो, उसे शरीर से अत्यन्त भिन्नता का निर्णय करके उसके कर्तृत्व की बुद्धि छोड़ना चाहिए। कर्तृत्वबुद्धि छूटे बिना मध्यस्थता नहीं होती और मध्यस्थता के बिना वीतरागता नहीं होती। मेरा स्वरूप, पुद्गल की क्रिया का आधार नहीं है; मेरा स्वरूप तो मेरे अनन्त ज्ञानादिक का ही आधार है और शरीर आदि क्रिया का आधार पुद्गल ही है। मेरे बिना ही उनके कार्य स्वयं होते हैं।

भगवान का आत्मा आज शरीररहित अतीन्द्रिय हुआ। उसी

प्रकार प्रत्येक आत्मा अशरीरी चिदानन्दस्वरूप ही है। अभी भी आत्मा ऐसा ही है। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे जीवों! तुम ऐसे आत्मा को श्रद्धा में लो... शरीर तो पुद्‌गल का पिण्ड है, वह तो आज सुन्दर हो और कल सड़ जाये... उसमें आत्मा का जरा भी अधिकार नहीं है। आत्मा ध्यान रखे तो अच्छा रहे और आत्मा ध्यान न रखे तो बिगड़ जाये — ऐसा सम्बन्ध जरा भी नहीं है। अहो! आत्मा, अशरीरी; वह शरीर का आधार नहीं — ऐसे आत्मा को जानने से धर्मात्मा को शरीर आदि पक्षपात नहीं है; अत्यन्त मध्यस्थता है। आत्मा, शरीर आदि का साधन नहीं और शरीर, आत्मा के धर्म का साधन नहीं है। आत्मा कर्ता या साधन हुए बिना ही शरीरादि पुद्‌गल अपने कार्यरूप स्वयमेव परिणमित होते हैं — ऐसी भिन्नता के भान बिना अशरीरी सिद्धपद की वास्तविक पहचान नहीं होती।

भगवान आत्मा, अशरीरी है, अतीन्द्रिय है — ऐसे निर्णय के बिना अशरीरी पद की साधकदशा नहीं होती। शरीर या इन्द्रियों को सहायकरूप मानें, आत्मा उनके कार्य का कर्ता-कारण या आधार है — ऐसा मानें तो उसने अशरीरी आत्मा को नहीं जाना है और अशरीरी सिद्धपद को भी नहीं पहचाना है। इस कारण जिन्दगी, देह के कार्य अपने मानकर बितायी है परन्तु अब समझे तब से सबेरा! अर्थात् जहाँ देहादिक से भिन्न आत्मा की सम्यक् पहचान हुई, वहाँ भेदज्ञानरूपी सुप्रभात उदित हुआ।

अरे जीवो! तुम्हारा आत्मा इस एक क्षेत्र में रहनेवाले शरीर के कार्य में भी कारणरूप नहीं है तो फिर दूसरों की तो क्या बात! देह मन्दिर में विराजमान भगवान आत्मा, अशरीरी है; वह देह का भी

आधार नहीं तो बाहर के पदार्थों की क्या बात! कहीं तेरा कर्तापना नहीं है इसलिए तू उनका पक्षपात छोड़ दे। यह वीतरागता का मार्ग है... यह सिद्धपद का पंथ है।

देखो... यह वीतरागता का मार्ग! यह परमात्मा का पन्थ और यह सिद्धपद को साधने का मार्ग! भगवान महावीर ऐसे मार्ग से मोक्ष को प्राप्त हुए और ऐसा ही मार्ग उन्होंने विपुलाचल पर दिव्यध्वनि द्वारा बतलाया था।

भाई! तेरा अदृश्य आत्मा, वह इस दृश्यमान देह का कारण कैसे होगा? तेरा चिदानन्द आत्मा, इस जड़ पुद्गल का पक्षपाती (कर्ता) कैसे होगा? इसलिए उसके कारणपने का पक्षपात छोड़कर, अशरीरी चिदानन्द आत्मा की ओर परिणति को अन्तर में झुका।

इस दीपावली के पावन दिन ऐसी बात समझकर, परिणति को अन्तर-सन्मुख करना ही वास्तविक दीपावली है, उसमें सम्यग्ज्ञान का वास्तविक दीपक प्रगट होता है, वह मङ्गल है।●●

[आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष-21, अङ्क-1, वी. नि.सं. 1990]

स्वानुभूतिरूप मार्ग

अहा! स्वानुभूतिमय यह मार्ग तो अनन्त आनन्द का देनेवाला मार्ग है। अनन्त आनन्द का मार्ग तो ऐसा अद्भुत ही होता है न! जगत को ऐसे मार्ग का लक्ष्य नहीं है, इसलिए बाहर में राग के सेवन को मार्ग मान रहा है। बापू! तेरा मार्ग राग में नहीं; तेरा मार्ग तो चैतन्य में समाहित है। चैतन्य में अगाध गम्भीर शान्ति और अनन्त गुण का भण्डार भरा है, उसमें देखते ही तुझे आनन्द का सागर दिखायी देगा।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

परिशिष्ट कथा

एक सिंह की आत्मकथा

एक बार मैं माँस-भक्षी सिंह था, उस समय महाभाग्य से मुझे मुनिवरों का समागम मिला... उन मुनिवरों के क्षणिक समागम से मेरा क्रूरपरिणाम तुरन्त ही छूट गया और शान्तपरिणाम हुआ... उनके उपदेश से आत्मज्ञान प्राप्त करके मैं परमात्म-पन्थ का पथिक बन गया...।

उन मुनिवरों के समागम की अपनी यह सुन्दर कहानी मैं आपको सुनाता हूँ, उसे आप आनन्द से सुनो —

अनादि-अज्ञान के वशीभूत हुआ मैं भटकते-भटकते एकबार श्री ऋषभदेव का पौत्र हुआ, तब भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि मैं भविष्य में भरतक्षेत्र का चौबीसवाँ तीर्थङ्कर होऊँगा। यह सुनकर मुझे हर्ष के साथ अभिमान पैदा हो गया... अरे रे! उस समय मेरे दादाजी आदि-तीर्थङ्कर की धर्मसभा में भी मैंने आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया... और मिथ्यादृष्टि रहकर असंख्य भव धारण कर नरक-निगोद में जाकर दुःखी हुआ।

फिर एक बार सुन्दर बगीचे के निमित्त से संसार से विरक्त होकर मैंने आत्मज्ञान प्राप्त किया। अरे रे! फिर विषय-कषाय के वश होकर मैं उसे भूल गया और नरक-तिर्यञ्चगति में चला गया।

एक बार मैं सिंह हुआ..., और जङ्गल में हिरण को मारकर

माँस खाने की तैयारी कर रहा था, तभी एकाएक दो सौम्य मुद्राधारी मुनिराजों ने आकाशमार्ग से उतरकर मुझे दर्शन दिये... कैसा अद्‌भुत था उनका दैदीप्यमान मुख–मण्डल! उनकी मुद्रा कैसी अपार शान्त और निर्भय!! बस, वे मुझसे बिना डरे शान्त नजर से वात्सल्यभाव से मुझे देख रहे थे। उन्हें देखकर मैं तो मुग्ध हो गया। अहा! कैसी सुशोभित हो रही थी उनकी करुणापूर्ण मधुर नजर!!

कौन हैं ये महापुरुष? किसलिए यहाँ पधारे हैं? मेरे कोई परम हितैषी लगते हैं। मेरा चित्त उनमें ऐसा स्थिर हो गया कि मैं भूखा था और पास में ही मेरा शिकार – मरा हुआ हिरण पड़ा था, फिर भी मेरी उसे खाने की इच्छा सर्वथा समाप्त हो गयी थी... उस समय मुझे विचार आ रहा था कि अरे रे! कहाँ मेरी हिंसकवृत्ति! और कहाँ इन मुनिवरों की परम शान्ति!!.....

उनका साथ मुझे बहुत अच्छा लग रहा था। आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से मैंने पूछा – 'हे प्रभु! आप यहाँ क्यों पधारे हो? आपके पास मुझे महान् शान्ति मिल रही है।'

मुनिराज ने वात्सल्यपूर्ण हृदय से मुझे सम्बोधन दिया — 'हे भव्य! हम भगवान के पास से आ रहे हैं.... और तुम्हें आत्मज्ञान प्राप्त कराकर तुम्हारा उद्धार करने के उद्देश्य से ही यहाँ आये हैं।'

अहो! कैसी आनन्द की बात!! ऐसे महान् महात्मा, आकाशमार्ग से मेरा उद्धार करने पधारे और वह भी परमेश्वर के पास से! धन्य भाग्य!! 'अब वे मुझसे क्या कहेंगे?' – यह सुनने के लिए मेरा मन आतुर होने लगा। तब उनके श्रीमुख से अमृत की धारा झरने लगी —

'सुनो भव्य! इस भव से दस भाव बाद तुम (तुम्हारा ही आत्मा), भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर महावीर बनोगे और वीतरागी-अहिंसा धर्म का उपदेश देकर लाखों-करोड़ों जीवों का कल्याण करोगे।'

'अरे, मैं यह क्या सुन रहा हूँ। मैं तीर्थङ्कर बनूँगा! अहो! मुझे यह माँसाहार का परिणाम शोभा नहीं देता। मैं यह क्या कर रहा हूँ!' – इस प्रकार मैं पश्चाताप करने लगा।

तब मुनिराज ने मुझे आश्वासनपूर्वक कहा – 'हे वत्स! भूतकाल तो बीत गया.... अब उसकी चिन्ता छोड़ो... इन माँस-भक्षणादि पापभावों को सर्वथा छोड़ो.... तुम्हारा आत्मा, रागादि विकारों से भिन्न ज्ञानस्वरूपी है और उसमें ही शान्ति है, उसे तुम जानो... और अपने में शान्ति का अनुभव करो!'

बस, यह सुनकर मैं तो अन्दर आत्मस्वरूप के विचार में खो गया... कैसा है आत्मा? राग से भिन्न, हिंसा के भाव से भिन्न, शान्त-शान्त.... ऐसे आत्मा में कितना आनन्द होगा! मैं उसे अन्दर देखने का उद्यम करने लगा।

मुनिराज का सङ्ग मुझे बहुत उत्साह जागृत करा रहा था और उनका शान्तस्वरूप मुझे मेरे आत्मस्वरूप की प्रतीति उत्पन्न करा रहा था। मुनिवरों के क्षणभर के समागम से ही मेरे परिणाम में कोई आश्चर्यजनक महान् परिवर्तन हो रहा था.... मुनिराज ने मुझे आत्मज्ञान कराने के लिए बहुत प्रेम से कहा –

'हे भव्य! अन्दर में देख.... आत्मा कितनी सुन्दर वस्तु है! स्व से एकत्वरूप और पर से विभक्तरूप वह कैसी शोभती है! उसमें चैतन्यसुख का खजाना भरा हुआ है।'

मैंने अपने अन्दर देखा – 'अहो, अद्भुत! आश्चर्यकारी!! जिसे देखकर मेरी प्रसन्नता का पार नहीं रहा... बस! अपनी आत्मा को देखते ही मेरा अज्ञान दूर हो गया। आत्मा के शान्तरस के स्वाद से महान तृप्ति हुई... उस समय मुझे क्रूर कषायपरिणाम से भिन्न आत्मा का भान हो गया... और कषाय से भिन्न शान्त परमात्मतत्त्व को जानकर, मैं भी परमात्म-पन्थ का पथिक बन गया। इसके बाद आत्मसाधना करते-करते दस भव बाद मैं भी तीर्थङ्कर महावीर बनूँगा।'

इस प्रकार मुनिवरों के क्षणिक समागम से मुझे जो महान आत्मलाभ हुआ, उसकी यह सुन्दर बात सुनकर हे साधर्मी मित्रो! तुम भी ज्ञानियों का, मुनिराजों का सत्सङ्ग करो और आत्मलाभ प्राप्त करो...। ●● *- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, धन्यमुनिराज हमारे हैं (खण्ड-3) से साभार*

सुख के लिए करनेयोग्य एक ही कार्य

आत्मा सदा ही अपने चैतन्यरस से परिपूर्ण महान आनन्दमन्दिर है; उसमें अन्तर्मुख होनेरूप आवश्यक कार्य करनेवाला जीव, कोई वचनातीत सहजसुख का अनुभव करता है। यह एक ही कार्य, संसार के घोर दुःखों का नाशक और परम मुक्ति सुख का कारण है; इसलिए हे भव्यजीवों! हे सुख के वांछक जीवों! अन्तर में शुद्धोपयोग को जोड़कर निजात्मतत्त्व के अनुभवरूप ऐसा उत्तम कार्य करो। यह एक ही अवश्य करने योग्य कार्य है; दूसरे सभी राग के कार्य तो संसार दुःख के दाता हैं। उनमें आत्म-शान्ति नहीं है। जिसे आत्म-शान्ति का अनुभव करना हो, उसके लिये करनेयोग्य एकमात्र यही कार्य है कि अन्तर में सहज चैतन्यसुख से भरपूर निज परमात्मतत्त्वरूप स्वयं अपने को ध्याना। उसके ध्यान द्वारा तुरन्त ही अपने में विकल्पातीत अध्यात्मसुख प्रगट होता है। *(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)*

तीर्थधाम मङ्गलायतन में उपलब्ध
वीतरागी सत्साहित्य

श्री समयसार वचनिका	150/-
श्री समयसार	25/-
श्री प्रवचनसार	50/-
श्री नियमसार	30/-
श्री अष्टपाहुड़	50/-
पञ्चास्तिकाय संग्रह (जयसेनाचार्य कृत टीका)	40/-
छहढाला (हिन्दी/अंग्रेजी)	100/-
अध्यात्म पञ्च संग्रह	25/-
जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (हिन्दी/अंग्रेजी)	25/-

प्रवचनसाहित्य - पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन (भाग 1-4)	140/-
कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन (खण्ड 1 व 2)	100/-
प्रवचन सुधा (प्रवचनसार प्रवचन, भाग 1-5)	100/-
प्रवचन रत्न चिन्तामणि (नियमसार प्रवचन, भाग 1, 2 व 3)	90/-
वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन (भाग 1 व 2)	45/-
योगसार प्रवचन (भाग 1, 2)	40/-
धन्य मुनिदशा प्रवचन	35/-
अनुभवप्रकाश प्रवचन	25/-
अष्टपाहुड़ प्रवचन (भाग 1)	25/-
समयसार नाटक प्रवचन (भाग 1)	25/-
आतम के हित पन्थ लाग	25/-
भक्तामर रहस्य	20/-
स्वतन्त्रता की घोषणा	18/-
स्वाधीनता का शंखनाद	18/-
देखो जी आदीश्वरस्वामी	18/-
ज्ञानचक्षु भगवान आत्मा	18/-
विषापहार प्रवचन	15/-
दशधर्म प्रवचन	15/-
वस्तुविज्ञान सार	15/-
जैनम् जयतु शासनम्	15/-
जिनप्रतिमा जिनसारखी	15/-
वह घड़ी कब आयेगी !(अपूर्व अवसर प्रवचन)	15/-
पञ्च कल्याणक प्रवचन	10/-
भेदविज्ञानसार	25/-

कथा एवं बाल साहित्य

धन्य मुनिराज हमारे हैं - कथा संग्रह (खण्ड 1 से 5)	75/-
जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला	10/-
आत्म-साधिका	20/-
बढ़ते चरण (के.जी 1-2, सेट, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)	100/-
अकाल की रेखाएँ (कॉमिक्स)	15/-
बलिदान (कॉमिक्स)	15/-
कामदेव प्रद्युम्न (कॉमिक्स)	15/-

पैकिंग एवं डाकखर्च अतिरिक्त होगा।

हमारे यहाँ उपलब्ध डी.वी.डी. / सी.डी.

वीतराग-वाणी (पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 प्रवचन सोलह डी.वी.डी. में)	100/-
वीतराग-वाणी (पूज्य गुरुदेवश्री के 2700 हिन्दी प्रवचन सात डी.वी.डी. में)	50/-
मङ्गल जिनवाणी (श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, योगसार, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, एवं आत्मसिद्धि शास्त्र की संगीतमयी प्रस्तुति)	25/-
समयसार नाटक	25/-
देव-शास्त्र-गुरु भक्ति	25/-
मङ्गल बोधि (नैतिक शिक्षाप्रद कथाओं की वीडियो प्रस्तुति)	25/-
मङ्गल कथा (जैन पौराणिक कथाओं की वीडियो प्रस्तुति)	25/-
तीर्थधाम मङ्गलायतन - एक आह्वान (परिचय डी.वी.डी.)	20/-

सम्पर्कसूत्र : सत्साहित्य विक्रय केन्द्र,
तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरामार्ग,
सासनी-204216 (महामायानगर) उत्तरप्रदेश
फोन : 99979 96346, फैक्स : 0571-2410019

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com

भारत में उत्तरप्रदेश प्रान्त की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित 21वीं शती का
विशुद्ध जिनायतन संकुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

तीर्थधाम मङ्गलायतन

प्रमुख दर्शनीय स्थल

1. कृत्रिम कैलाशपर्वत पर भगवान आदिनाथ मन्दिर एवं चौबीस तीर्थङ्करों की निर्वाणस्थलियाँ – कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारगिर, चम्पापुरी, पावापुरी एवं सोनागिरी व स्वर्णपुरी सोनगढ़ की विधिपूर्वक स्थापनाओं के दर्शन
2. भगवान महावीर मन्दिर
3. भगवान बाहुबली मन्दिर
4. पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर एवं जिनवाणी संरक्षण केन्द्र
5. आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तन केन्द्र
6. धन्य मुनिदशा (दिगम्बर मुनिराजों की दशा एवं चर्या)
7. आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप एवं शोध संस्थान
8. भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

दीपावली प्रवचन